ओ३म्

हिन्दी में प्रथम बार

दयानन्द-आनन्द-सागर

अर्थात्

महर्षि दयानन्द का जीवन चरित

कविता में

रचयिता

अल्लामा चम्पतराय 'सादिक'

सम्पादक, अनुवादक

[एक सौ से ऊपर पुस्तकों के प्रणेता]

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशक

स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोधसंस्थान

अबोहर-१५२११६

प्राप्ति स्थान–

स्वामी सम्पूर्णानन्द जी, कुटिया नली खुर्द, वाया कुञ्जपुरा,
ज़िला करनाल (हरियाणा)

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द ४४०८, नई सड़क, देहली-११०००६

आचार्य हरिदेव जी ११९, गुरुकुल गौतम नगर, नई देहली-११००४९

टंकारा साहित्य सदन, आर्यसमाज हिण्डौन सिटी-३२२२३०

आर्ष गुरुकुल गौतम नगर, नई देहली-११००४९

वेदप्रचार मण्डल ४७०२, हस्पताल बाज़ार, बठिण्डा-१५१००५

श्री गणेश-गरिमा गोयल २७०७, प्रेम मणि निवास, गली पत्ते वाली,
नया बाज़ार, देहली-११०००६

मूल्य : **५०.०० रुपये**

सन् २००१ ई० प्रथम संस्करण

प्रकाशक : **स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोधसंस्थान**
श्री योग निरोगधाम
वेदसदन, अबोहर-२५२११६
दूरभाष : ०१६३४-२६४०३

मुद्रक : **राधा प्रेस**, गांधी नगर, देहली-११००३१

Dayananda Anand Sagar

Edited by **RAJENDRA JIGYASU**

समर्पण

एक सच्चे प्रभु भक्त, वेदनिष्ठ, ऋषि भक्त,
आर्य पिता के आर्य पुत्र,
देश जाति के निष्काम व साहसी सेवक,
केरल वैदिक मिशन के प्रधान,
परोपकारी, दानी व ज्ञानी,
एक पुण्यात्मा जो अनगिनत हृदयों पर अपनी
सेवाओं व सद्‌गुणों की
अमिट छाप छोड़ गया,
पुरुषार्थ व परमार्थ के उस पुतले
अपने एक श्रद्धेय भाई—एक आदर्श चिकित्सक,
स्वर्गीय **श्री डा० ओ३म्प्रकाश जी गुप्त** करनाल
की
पावन जीवनदायिनी स्मृति में
यह पुस्तक **'दयानन्द आनन्द सागर'**
समर्पित करता हूँ ।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
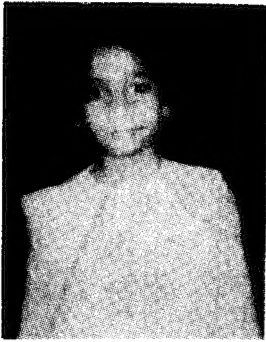
सुमधुर स्मृति

'दयानन्द आनन्द सागर' के प्रकाशन की चाह तो अनेक भक्तों की रही परन्तु प्रश्न इसको देवनागरी अक्षरों में प्रकाशित करने व सम्पदित करने का इतना कठिन नहीं जितना कि इसके प्रचार प्रसार का। धार्मिक पुस्तकों की खपत भी तो एक अति कठिन कार्य है । हर्ष का विषय है कि अपने विषय की इस अनुपम और रसभरी पुस्तक के प्रकाशन के लिये एक धर्म प्रेमी परिवार ने सहयोग का हाथ बढ़ा कर संस्थान को इस करणीय कार्य के लिये प्रोत्साहित किया ।

बठिण्डा के धर्मनिष्ठ, जाति भक्त व स्वदेशप्रेमी बन्धु श्री सूरज अग्रवाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमति मधु अग्रवाल ने अपने प्रिय पुत्र प्रवीण कुमार की स्मृति में इस पुनीत कार्य के लिये ठोस सहयोग करके हमें बहुत कुछ चिन्तामुक्त कर दिया । प्रभु की अमृत वाणी वेद के प्रचार, राष्ट्रोत्थान, जनकल्यान व विश्व कल्याण के लिये अपना बलिदान देने वाले बाल ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द की इस अमर कथा के प्रकाशन व प्रसार का यश लूटने वाले इस परिवार को अपने इस सत्कर्म व सौभाग्य पर इतराने का एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है । भाग्यशाली परिवार ने यह अवसर हाथ से निकलने नहीं दिया । यह दूसरों के लिये एक उदाहरण है । निःसन्देह इस ऐतिहासिक पुस्तक के प्रकाशन से इस कुल की कीर्ति की सुगन्धि देश-विदेश में फैलेगी।

प्रिय प्रवीण का जन्म १४-९-१९७७ को हरियाणा के ऐतिहासिक नगर भिवानी में हुआ । केवल पन्द्रह वर्ष की अल्प आयु में इस होनहार बालक का बठिण्डा में २८-३-१९९२ को एक दुर्घटना में दुःखद निधन हो गया । मृत्यु के समय वह नवीं कक्षा का विद्यार्थी था ।

परिवार के लोगों ने अपने लाडले पुत्र की सुमधुर स्मृति में देश धर्म पर सर्वस्व लुटाने वाले बलिदानी वीरों के इतिहास को सुरक्षित करने के लिये पहले **'वे दिलजले'** पुस्तक छपवाने में सहयोग किया और अब 'दयानन्द आनन्द सागर' के प्रकाशन का शिव सङ्कल्प करके पुण्य कमाया है । श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त एडवोकेट भी पाठकों के धन्यवाद के पात्र हैं जो अपने मित्रों को ऐसे उत्तम कार्यों के लिये प्रेरित करते रहते हैं । श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन भी एक यज्ञ है ।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशकीय

आचार्य चमूपति जी की ऐतिहासिक रचना **'दयानन्द आनन्द सागर'** हिन्दी प्रेमियों को भेंट करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है । पण्डित चमूपति जी के इस काव्य का आर्य साहित्य में एक विशेष स्थान है । इसके लिए पण्डित जी ने घर बार को वार दिया । उन्होंने बहुत भावनाशील होकर यह काव्य रचा । काव्य की दृष्टि से तो यह एक ऊंची रचना है ही, इसकी एक एक पंक्ति पण्डित जी के गम्भीर ज्ञान का भी पता देती है ।

हिन्दी में तो प्रथम बार ही इसका प्रकाशन हो रहा है । वर्षों से धर्मप्रेमी जनता का आग्रह था कि प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु इस काम को हाथ में लेकर पूरा कर दें । श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त एडवोकेट हमारे संस्थान के एक स्तम्भ हैं । उनकी प्रबल प्रेरणा से यह शुभ कार्य पूरा हो गया है । मैंने पं० लेखराम बलिदान शताब्दी पर संस्थान का कार्यभार संभाला । मुझे हर्ष है कि चार वर्ष के थोड़े से समय में संस्थान ने कई उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करके देश-विदेश में धूम मचा दी है । अब देखना यह है कि धर्मप्रेमी जनता इस पुस्तक के प्रसार में कितना उत्साह दिखाती है । नगरों व ग्रामों में सत्संगों में इसकी कथा करने से विशेष लाभ होगा ।

पण्डित जी की कई कवितायें पुराने पत्रों से खोज कर इस पुस्तक में दे दी गई हैं । इससे 'दयानन्द आनन्द सागर' की गरिमा और बढ़ गई है ।

श्रीपालार्य, *सचिव*
स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोधसंस्थान

वेद सदन,
अबोहर-१५२११६

रचयिता की दो दो बातें

१. **पाठकों से**—जब से दयानन्द में आस्था हुई तभी से चित्त ने चैन पाया। आजकल के मज़हबी भँवर से श्रद्धा की नौका को सुरक्षित निकालना और मोक्ष के तट तक पहुंचाना एक ऐसे प्रभु प्रिय खेवनहार के बिना असम्भव है। अब जब कभी आत्मिक भार लगता है तो इस आनन्द के स्रोत की ओर प्रवृत्त होते हैं। पण्डित गुरुदत्त के समान हम यह कहने की हिम्मत नहीं रखते कि दयानन्द का जीवन हम अपने जीवन में उतार रहे हैं (अंकित कर रहे हैं)। हाँ! विचारों की चित्रावली में उसका प्रतिबिम्ब प्रतिक्षण विद्यमान रहता है और मन को उसकी ज्योति से नानाविध प्रकाश प्राप्त होता है। संसार का कोई भी ऐसा पड़ाव नहीं जिसमें इस पूर्ण पथ-प्रदर्शक के महान् कार्यों से शिक्षा प्राप्त न हो। परलोक की कोई गुत्थी ऐसी नहीं जो इस पूर्ण मार्गदर्शक के उपदेश से न सुलझाई जा सके। इस नायक की विशेषता यह है कि पथिक को स्वयम् अपना पथ-प्रदर्शक बना देता है।

आर्यसमाज के पत्र अपने विशेषाङ्कों[1] के लिए ऋषि की शान में कविताएँ मांगते थे। सोचता था कि धीरे धीरे स्वामी जी के जीवन की सब घटनाएँ पद्य में आ जायेंगी परन्तु इन कविताओं की लय, छन्द सब न्यारे। क्रमबद्ध कहानी न बन सकती। डी०ए०वी० कालेज के प्रोफ़ेसर श्री दीवानचन्द जी एम०ए० ने यह विचार सुझाया कि स्वामी जी की जीवनी की घटनाएँ क्रमबद्ध कविता में रच दो। बात थी, अड़ गई। विचार था, जम गया। एकदम मन में जोश आया और उस समय तक चैन न लिया जब तक ये पृष्ठ पूरे न हो गये। लगभग एक मास इसी उधेड़बुन में रहे। ईश्वर का धन्यवाद कि श्रद्धा का कर्त्तव्य पूरा हो गया। प्रेम के सीस से बोझा उतर गया। इन पृष्ठों में कोई माधुर्य है, आनन्द है, उल्लास है। गुणी गम्भीर जन इसकी मिठास को चख पायेंगे।

स्वामी की शान में जो रचनाएँ पत्रों के विशेषाङ्कों में प्रकाशित हुईं उन्हें परिशिष्ट के रूप में इस पुस्तक के अन्त में दे दिया है।

२. **काव्य कला के पारखियों से**—उपरोक्त लेख की प्रथम प्रति

---

१. वर्तमान युग का व्यक्ति यह कल्पना ही नहीं कर सकता कि उस युग के आर्य सामाजिक पत्रों का स्तर कितना ऊंचा था। विशेषाङ्क कैसे होते थे। विशेषाङ्क क्या होते थे, संग्रह योग्य पुस्तकें होती थीं। **'जिज्ञासु'**

के अन्त में ग्यारह जुलाई सन् १९१९ अंकित है । इसके पश्चात् पुस्तक प्रकाशनार्थ लाहौर भेज दी गई । दूसरी बार देखने का थोड़ा सा अवसर मिला । प्रथम लेख के पश्चात् कुछ समय लेखक की दृष्टि के निकट रहने से कई बार काट छांट होती रहती है । **दयानन्द आनन्दसागर की चाह मेरे मित्रों** को इतनी अधिक थी कि लिखे जाने के पश्चात् एक मास भी मेरे पास (पाण्डुलिपि) नहीं रहने दिया । इसलिए यदि भाषा वा छन्दःशास्त्र की दृष्टि से कोई दोष रहे तो समीक्षक महानुभाव कृपा दृष्टि रखते हुए उपेक्षा कर देंगे (दोषों को ध्यान में नहीं लायेंगे) । रचयिता को सूचित करके, भविष्य में सुधार के साथ धन्यवाद प्राप्त करेंगे ।

काव्य कला के पारखियों को कहीं-कहीं कच्चे काफ़ियों (तुक के मिलान) पर आपत्ति होगी । उर्दू फ़ारसी कविता की विशेषता उसके पूर्ण काफ़िये (तुक) हैं । इसमें सन्देह नहीं कि पूरा काफ़िया पद्य में एक अनूठी मिठास उत्पन्न करता है परन्तु इस की अनिवार्यता एक ऐसी खोज का कारण बनती है जो कभी-कभी अत्यन्त मनोहर व सूक्ष्म भावों की हत्या करवा देती है । उर्दू वालों का ध्यान Blank verse (अतुकान्त कविता) की ओर खिंचा था परन्तु अब विचार निकल गया है । संस्कृत में सब प्रकार के विचार कविता में रखने की क्षमता इस कारण से है कि इस में तुक का बन्धन नहीं है । अंग्रेज़ी में ब्लैंक वर्स ने तो काफ़िये (तुक बन्दी) को उड़ा कर ही रख दिया है और जो तुक है भी वह सन् कोमों की तुक मिलाता है । छन्दःशास्त्र के सौन्दर्य का यह एक दोष ही मान लें परन्तु कौन कह सकता है कि इन भाषाओं में सच्ची काव्य कला नहीं । **कविता हृदय के भावों का चित्र है ।** यदि लय का ध्यान रखे-इस नियम का पालन करे तो सुन्दर हो जाता है । तुकबन्दी होने से सुन्दरता और भी बढ़ जाती है । तथापि यह भी क्या हुआ कि काफ़िया (तुकबन्दी) अधूरी होने के अपराध में कवि को काव्य लोक से ही निष्कासित कर दिया जाये । उदाहरण के लिए हम ने सिन का काफ़िया पूजन बांधा है ।

जो चौदह बरस का हुआ मूल का सिन ।
सिखाया गया उनको शिवजी का पूजन ॥

बदलने को तो प्रथम पंक्ति ऐसे भी बदल देते-

जो चौदह बरस का हुआ भोला बचपन ।
सिखाया गया मूल को शिव का पूजन ॥

परन्तु पहले ही पद्य पर आक्षेप का क्या अवसर है ?

इसी प्रकार रोटी का काफ़िया कसौटी से बांधा गया है ।

यहां पेट भर मिलती रोटी नहीं है ।
कोई झूठ सच्च की कसौटी नहीं है ॥

कहने को तो दूसरी पंक्ति ऐसे लिख देते–

बदन ढाँपने को लंगोटी नहीं है ।

परन्तु आवश्यकता ? ऐसे ही दूसरे स्थानों पर विचार कर लेना चाहिए । "दूना" का काफ़िया "मांगा" तो गुरुजन भी बांधते हैं ।

यदि उर्दू कवियों को यह स्वतन्त्रता असह्य लगी तो हम दूसरे संस्करण में परिवर्तन कर देंगे ।

३. **भाषा वालों से**–हमारी भाषा पर सन्देह करने वाले इधर आर्य बन्धु हैं । उधर उर्दू पठित भाई । आर्य सज्जन चाहते हैं कि सब पुस्तकें विशेष रूप से धर्म ग्रन्थ आर्य भाषा में रचे जायें । कोई पुस्तक उर्दू में निकले तो उसकी लिपि भले ही उर्दू में हो शब्द भाषा के रहें । उर्दू पठित चाहते हैं कि कड़ी फ़ारसी हो ।

हम इस भाषायी विवाद को भ्रान्ति का विवाद समझते हैं । हिन्दुओं की धार्मिक आवश्यकताएँ उनको संस्कृत-निर्भर रखेंगी । और जो हिन्दू संस्कृत नहीं पढ़ता वह पूरा हिन्दू नहीं । फिर भी हमारी बोलचाल एक ऐसी भाषा में होती है जिसे हिन्दी पठित हिन्दी अथवा आर्यभाषा कहते हैं और उर्दू पठित उर्दू । लिपि की दीवार इतनी सुदृढ़ है कि दोनों भाषाएँ वास्तव में एक होते हुए भी भिन्न-भिन्न हैं । इसमें सन्देह नहीं कि (देव) नागरी लिपि की विशेषताएँ इस लिपि की शैली (बनावट) के साथ हैं। ये विशेषताएँ किसी अन्य लिपि ने नहीं पाईं । उर्दू अक्षरों को निर्दोष (पूर्ण- व्यापक) अक्षर बनाने का प्रयास किया गया है । उदाहरण के लिए ड़े और डाल (ड़ व ड) इत्यादि जो फ़ारसी में न थे हिन्दी से लिये गये हैं और यद्यपि कई अतिरिक्त अक्षर जैसे एक ही ध्वनि के लिए सीन, से, स्वाद[१] तीन विभिन्न अक्षरों का बनाय रखना पढ़ने वाले के लिए एक बहुत बड़ी रुकावट है । लेखनी की पथप्रदर्शक वाणी (Speech) नहीं हो सकती । कोई इसरार (हठ-ज़िद्द) का असरार (भेद-रहस्य) लिख दे तो अशुद्ध हो जाता है[२] । और इस सीन, स्वाद, से के भेद के लिए

---

१. फ़ारसी उर्दू लिपि में ऐसे और भी कई अक्षर हैं यथा अ, ए, य, ह, ज़ व क के लिए एक से अधिक अक्षर हैं । इनको कहाँ ? कैसे ? प्रयोग करना है इसके लिए कोई नियम है ही नहीं । **'जिज्ञासु'**

१. मुस्तग़ीस शब्द लगभग बारह प्रकार से लिखा जा सकता है परन्तु शुद्ध तो एक ही माना जाता है । **'जिज्ञासु'**

बहुत सी मानसिक शक्ति व्यर्थ व्यय होती है। तथापि कई ध्वनियाँ जो भारतीयों के कण्ठ से निकल सकती हैं उर्दू अलिफ़ बे में इकट्ठी हो जाना एक विशेषता है और यह गुण आर्य भाषा अथवा हिन्दी में भी विद्यमान है।

फ़ारसी लिपि का यह गुण ? या दोष–अक्षरों के नाम और हैं, ध्वनियाँ और। यह दोष है। उदाहरण के लिए अलिफ़ जो मात्र अ है को अलिफ़ कहना, उसमें लाम (ल) और फ़े (फ़) बढ़ाना है। इससे भी नये पढ़ने वाले के लिए विघ्न उत्पन्न होता है। वह यह नहीं समझ सकता कि अलिफ़ व बे मिलकर अब कैसे हो जाता है। चाहिए तो यह था कि दोनों के मेल से बना शब्द 'अलिफ़ बे' बोला जाता। तथापि उर्दू पढ़ने वालों को सिखाया जा सकता है कि अपने अक्षरों के नाम बदल दो। नागरी में अ को अ कहा जाता है। ब को ब कहा जाता है जिससे बालक को अक्षरों के जोड़ने में कठिनाई नहीं होती और अक्षरों का क्रम (स्रोत) उच्चारण के आधार पर कर देने से एक और सुविधा होती है जिसे भाषाविज्ञान के विशेषज्ञ मर्मज्ञ समझते व प्रशंसा करते हैं। अक्षर-बोध करवाने का एक विज्ञान है और नागरी लिपि वाले इससे भली प्रकार से परिचित थे।

मान्य सैयद अली बिलग्रामी की स्वीकारोक्ति–उर्दू लिपि का सब से बड़ा दोष वह है जिसकी सैयद अली बिलग्रामी[१] ने अपनी पुस्तक 'तमद्दने अरब' की भूमिका में शिकायत की है। वह है मात्राओं का अक्षरों से पृथक् होना। ज़ेर (इ) ज़बर (अ) [ि व ा] व पेश (उ ु) शब्द का भाग नहीं बनते जैसे हिन्दी भाषा में बनते हैं। अंग्रेज़ी की मात्राएँ भी अक्षर हैं जिससे तवालत (बढ़ती) उत्पन्न होती है। हिन्दी भाषा में मात्राएँ चिह्न हैं परन्तु उन्हें शब्द में मिलाना होता है। इससे उनका लोप नहीं हो सकता। उर्दू पठित लोगों के उच्चारण में दोष होने का एक कारण यह है कि उन्हें शब्द पूरे पूरे नहीं मिलते–उर्दू की प्रथम पुस्तक को छोड़कर। हिन्दी भाषा में अब का न इब पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं। विधिवत् शिक्षा पाने वालों का उच्चारण भ्रष्ट हो ही नहीं सकता। उर्दू में शब्द का प्रथम अक्षर साकिन (ठहरा हुआ) हो ही नहीं सकता। भाषा में होते हैं। उदाहरण के लिए प्रभु। इस में प गतिमान् नहीं र है। उर्दू में यह लिखा ही नहीं जा सकता[२]

---

१. आप उर्दू के एक जाने माने साहित्यकार व मुस्लिम विद्वान् हुए हैं। **'जिज्ञासु'**

२. फ़ारसी लिपि में संयुक्त अक्षर हैं ही नहीं। क्ष, ज्ञ, त्र आदि के लिए उर्दू में कोई स्थान ही नहीं। **'जिज्ञासु'**

और ऐसे लाखों शब्द हैं ।

उर्दू लिपि से भाषा की लिपि श्रेष्ठ है । उपयोगी है । विधिवत्-वैज्ञानिक है । बंगला, गुजराती, गुरुमुखी इन सब भाषाओं की लिपि नागरी लिपि का ही विकृत रूप है ।[१] इसलिए इन लोगों के लिए देवनागरी पढ़ना नई भाषा का अध्ययन नहीं । भारत के अधिकांश भागों में इसका प्रचलन है । और महात्मा गांधी सरीखे देशभक्त व जातिप्रेमी का इस भाषा को देश के लिए अपनाना इस बात का प्रमाण है (युक्ति) कि इस लिपि को भारतीय लिपि कहना मुस्लिम पक्षपात नहीं । मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकें इस लिपि में लिखी जा सकती हैं परन्तु हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकें फ़ारसी लिपि को स्वीकार नहीं करतीं और धर्म की सुरक्षा देखरेख दोनों के लिए आवश्यक है । और यह विचार भी एक महत्त्वपूर्ण है लिपि के बदलने से धर्म नहीं बदल जाता । वेद वेद रहता है चाहे उसे कोई लिपि दे दो । शर्त यह है कि इस लिपि में उसकी ध्वनियों की अभिव्यक्ति हो जाय । इसी प्रकार कुरान कुरान है भले ही उसको किसी भी लिपि में लिपिबद्ध किया जाय । ध्वनियां वही हों भाषा अरबी हो । वर्तमान अंग्रेज़ी अनुवादों में कुरान की आयतें रोमन अक्षरों में लिखी जाती हैं और वे भी यदि ठीक प्रकार से पढ़ी जा सकती हों तो कुरान ही की आयतें हैं ।

हमने इसे उर्दू में क्यों लिखा ?—कुछ भी हो, हम ने अपनी पुस्तक उर्दू लिपि में प्रकाशित करवाई है और अभी यह नहीं बताना चाहते कि हम ने ऐसा क्यों किया ? हम अपनी भाषा के विषय में कुछ शब्द कहेंगे ।

हम ने ऊपर लिखा है कि उर्दू हिन्दी एक हैं । कड़ी अरबी और कड़ी फ़ारसी उर्दू पठित जनता को समझ नहीं आती तो हिन्दी पठित लोगों की समझ में क्या आयगी । ऐसे ही कठिन संस्कृत शब्द हिन्दी पढ़ने वाले नहीं समझ सकते तो उर्दू पठित क्या समझेंगे ? सरल उर्दू व सरल आर्यभाषा एक हैं । हिन्दुओं व मुसलमानों में एकता की सब से सुदृढ़ कड़ी एक भाषा होगी[२] । सम्प्रति इनकी लिपि एक नहीं हो सकती तो दोनों का यह कर्त्तव्य

---

१. मराठी की लिपि तो देवनागरी ही है । पं० चमूपति जी ने भूल से इसकी गणना भी इन्हीं के साथ कर दी है । **'जिज्ञासु'**

२. दुर्भाग्य से उर्दू पोषक मुसलमान उर्दू में भारतीय भाषाओं के शब्द प्रयोग ही नहीं करने देते । फ़ारसी अरबी के बोझिल शब्दों का प्रयोग ही उनकी दृष्टि में साहित्य है । दूरदर्शन आकाशवाणी की उर्दू सर्विस सुनकर आप देख लें । **'जिज्ञासु'**

अवश्य है कि दोनों भाषाओं की लिपि सीखें । हिन्दू हिन्दी लिखा करें परन्तु उर्दू पढ़ अवश्य जाये तथा मुसलमान उर्दू का ही प्रयोग किया करें परन्तु हिन्दी पढ़ अवश्य ले । यदि अंग्रेजी प्रजा होकर अंग्रेज़ी पढ़ना आवश्यक है तो भारतीय माँ जाया होकर भारतीय भाषाओं का सीखना भी आवश्यक है । आजकल उर्दू हिन्दी का विवाद अनजानों (न जानने वालों) का झगड़ा है । जितनी शक्ति उर्दू हिन्दी न जानकर दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रतिवाद में व्यय करते हैं वह दोनों भाषाओं को सीखने में किया जाय तो काम चल जायगा । देशप्रेम बढ़ जायगा तथा दोनों भाषाओं के गुण-दोष से परिचित होकर निर्णय भी किया जा सकेगा कि भविष्य में भारत की भाषा क्या हो ।

हमारी यह पुस्तक उर्दू लिपि ही में नहीं, उर्दू भाषा में भी है। यह हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए लिखी गई है । क्योंकि दयानन्द जितना हिन्दुओं का था उतना मुसलमानों का भी था । सर सैयद् अहमद का प्रेम, सैयद मोहम्मद तहसीलदार की श्रद्धा, डा० रहीकउल्ला खाँ का शुभ चिन्तन प्रकट करता है कि जीवित दयानन्द से मुसलमानों को कैसा प्रेम था ।

मुसलमान कहते हैं कि उर्दू मुसलमानों की भाषा नहीं, हिन्दुओं की भी है । जो उर्दू हिन्दू परिवारों में बोली जाती है उसमें फ़ारसी नहीं। संस्कृत का मिश्रण अधिक है । हम ''तशरीफ़'' रखिये थोड़ा कहते हैं ''विराजिये'' अधिक कहते हैं विशेष रूप से घरों में देवियाँ । और जब विषय ही एक धार्मिक पथप्रदर्शक की जीवनी हो तो उस में हिन्दू शब्दावली का प्रयोग होना समुचित ही नहीं आवश्यक भी है । इससे रहित विषय अपनी वास्तविकता से दूर हो जाता है[१] । उर्दू पठित लोगों के लिए इसलिए भी कि उनका यह दावा है कि हिन्दू उर्दू बोलते हैं, ठीक सिद्ध हो इन शब्दों का अपनाना आवश्यक है ।

हमारे प्रयोग (महावरा) पर जो आक्षेप होंगे । उन पर हम विचार करेंगे और सदैव सुधार के लिए तत्पर रहेंगे ।

३० सितम्बर १९१९ **—चम्पतराय**

***

---

१. उर्दू के नाम पर देश का विभाजन भी करवा दिया गया । अब भी उर्दू चिल्ला कर हिन्दी के प्रचलन में उर्दू का रोड़ा अटकाया जाता है । यह दुर्भाग्य का विषय है । **'जिज्ञासु'**

विषय-सूची

परिशिष्ट

चरणों में विनीत विनती

सम्पादकीय

'दयानन्द आनन्द सागर' आचार्य चमूपति जी की एक ऐतिहासिक कृति है । आचार्य चमूपति जी एक मनीषी थे । मनीषी ही नहीं, वेद के शब्दों में कविर्मनीषी थे । ऐसी विभूतियां युगों के पश्चात् ही जन्म लेती हैं । साधु ट० ल० वासवानी हमारे देश के एक जाने माने अंग्रेज़ी लेखक थे । आप ने पं० चमूपति जी की हृदय स्पर्शी लौह लेखनी के बारे में कभी लिखा था, "He writes with beautiful devotion." अर्थात् वे अति सुन्दर भक्तिभाव से लिखते हैं । हम तो यह कहेंगे कि वे भक्ति विलीन होकर ही लिखा करते थे ।

'दयानन्द आनन्द सागर' अपनी शैली की प्रथम पुस्तक थी । यह उर्दू में प्रकाशित की गई । भूमिका की समाप्ति पर ३० सितम्बर, १९१९ ई० छपा मिलता है । तब आचार्य चमूपति 'चम्पतराय' के नाम से जाने जाते थे । इस काव्य की भूमिका **'इनसानियत के नग़मा'** के दो शब्दों के कारण रियासत बहावलपुर के मतांध मुसलमान सटपटा उठे। न जाने मतांधता को ही कठ मुल्लाओं ने क्यों इस्लाम समझ रखा है । पुस्तक के छपते ही मुल्ला लोग पण्डित जी के पीछे पड़ गए ।

मुसलमानी रियासत के समझदार मुसलमान व नवाब नहीं चाहते थे कि इस पुस्तक के कारण पण्डित जी को सताया जाय । मुल्ला कहते थे कि ये शब्द वापस लो अर्थात् हटाओ, क्षमा मांगो अन्यथा राज्य को छोड़ना पड़ेगा । पण्डित जी को राज्य से निष्कासित करने का अभियान छिड़ गया । नवाब के उच्च अधिकारियों व पण्डित जी के मुसलमान मित्रों ने आप से कहा, आप खेद प्रकट कर दें ताकि यह शोर यहीं बन्द हो जाय ।

आपने कहा कि मैंने कोई अपराध किया होता तो मैं सहर्ष दण्ड भुगत लेता अथवा क्षमा मांग लेता । अकारण ही खेद का प्रकाश कर

दूं—यह किस लिये ? आपने जन्म स्थान को स्वेच्छा से तज दिया, घर बार परिवार, स्वजनों, मित्रों व राज्य को ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धा व प्यार पर वार दिया । यह कोई छोटा सा त्याग नहीं था । यह बहुत बड़ा बलिदान था । तब साहस, शौर्य, कुर्बानी व बलिदान के लिए आर्यसमाज के सेवक देश विदेश में प्रसिद्ध थे । तब आर्यसमाज के सामने मिशन ही मुख्य था । ईंट पत्थर के भवनों व संस्थाओं, स्कूलों, कालेजों के बोझ के तले मिशन दबा कुचला नहीं गया था ।

सारे आर्यसमाज व आर्य जाति को पं० चमूपति जी की इस शूरता व कुर्बानी पर अभिमान हुआ । स्वयं पूज्य पण्डित जी ने इस घटना पर T.L VASWANI जी (ट०ल० वासवानी) को एक पत्र में यह भावपूर्ण पंक्तियां लिखीं, "The Sind brought me up and then disowned me ..... in that whole affair my consuming love of Dayananda—the writing of an Urdu biography of the Rishi in verse. ...... was my sole crime." अर्थात् सिन्धु नदी की गोदी में मेरा पालन पोषण हुआ फिर इसने मुझे तज दिया । इस सारे घटनाक्रम में मेरा अपराध केवल महर्षि दयानन्द के प्रति मेरा अपार प्यार ही तो था । **मैंने उर्दू कविता में ऋषि-जीवन रचा । बस यही मेरा अपराध था ।** फिर आगे लिखा, "My love of home I seem to have sacrificed." जन्म-भू का प्यार लगता है मैंने वार दिया । ऋषिवर दयानन्द के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा के लिये वे इसे कोई बड़ा मूल्य नहीं मानते थे ।

'दयानन्द आनन्द सागर' के प्रकाशन के उपरान्त भी कुछ समय तक वे चम्पतराय के नाम से ही जाने जाते थे । लगता है कि वेदविद् स्वामी वेदानन्द जी महाराज व स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से वे 'चमूपति' कहलाने लगे ।

श्री पण्डित जी ने 'भारत की भेंट' अपने उर्दू काव्य संग्रह में स्वयं लिखा है कि वे बहुत छोटी आयु में ही कविता लिखने लग गये थे । उनके एक सहपाठी डा० राधाकिशन ने लिखा है कि चम्पतराय जी जब इन्टरमीडियट (F.A.) में पढ़ते थे तब फ़ारसी में कवितायें लिखा

करते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने आपकी प्रतिभा को पहचाना। वे आपको पं० गुरुदत्त द्वितीय मानते थे। उस काल के सब बड़े-बड़े आर्य नेता व विद्वान् स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस मत से सहमत थे कि पं० गुरुदत्त ने पुनः चमूपति के रूप में जन्म लिया है। विचित्र बात यह है कि दोनों का जन्म का क्षेत्र सिन्धु नदी का तटवर्ती क्षेत्र था। दोनों जवानी में विरह-बाण चलाकर चल बसे। आर्यसमाज ने Genius (मनीषी) तो दो ही पैदा किये। एक पं० गुरुदत्त और दूसरे पं० चमूपति। विद्वान् तो आर्यसमाज ने कई पैदा किये। महात्मा नारायण स्वामी, मेहता जैमिनि आदि हमारे बड़ों का यह दृढ़ मत था। हम भी इससे पूरे पूरे सहमत हैं।

यहां पण्डित जी के जीवन, उपलब्धियों एवं सद्गुणों के बारे में सविस्तार नहीं लिख सकते। कभी उनकी रसभरी जीवनी भी छपवायेंगे। उनके निधन पर उर्दू के आर्य कवि श्री रोशन पटियालवी ने 'आर्य मुसाफ़िर' साप्ताहिक उर्दू में एक कविता में ये दो मार्मिक पंक्तियां लिखी थीं–

ख़ुश बयां शीरीं दहन सैफ़ उ-ज़बां हरदिल अज़ीज़।
अल्लाह अल्लाह ख़ाक के पुतले में इतनी ख़ूबियां॥

हमें 'रोशन' जी की कविता की ये दोनों पंक्तियां बहुत अच्छी लगीं। कवि ने गागर में सागर भर दिया। हम ने तत्काल यह निर्णय लिया कि 'दयानन्द आनन्द सागर' के सम्पादकीय में इन्हें देंगे और उसी समय इनका हिन्दी पद्यानुवाद कर दिया। अपनी पंक्तियां भी यहां दिये देते हैं–

वह सुवक्ता मधुरभाषी लौह लेखक पूज्यपाद।
वाह! वाह! इतना गुणी पञ्चतत्त्व का पुतला प्रभो!

इससे अधिक उस देव पुरुष के बारे में क्या कहा व लिखा जा सकता है?

'दयानन्द आनन्द सागर' का साहित्यिक जगत् में तो स्वागत हुआ ही, जनसाधारण पर भी इसका गहरा व व्यापक प्रभाव रहा। **हुतात्मा रामप्रसाद 'बिस्मिल'** न केवल एक महान क्रान्तिकारी थे प्रत्युत वे एक

सिद्धहस्त लेखक व कवि भी थे । उन पर भी 'दयानन्द आनन्द सागर' की अमिट छाप पड़ी । **उर्दू पत्रकारिता के पितामह श्री महाशय कृष्ण जी** भी इस पुस्तक की प्रशंसा करते नहीं थकते थे । उर्दू के विश्व विख्यात कवि **मुंशी त्रिलोकचन्द जी 'महरूम', श्रीजैमिनि 'सरशार', प्रो० उत्तमचन्द 'शरर'** आदि अनेक कवि इसे बड़े चाव से पढ़ते रहे । 'दयानन्द आनन्द सागर' की कविताओं की लोकप्रियता का पता इस बात से चलता है कि ये रचनाएं अपने समय के सिरमौर उर्दू पत्रों में छपती रहीं । कई कवितायें एक से अधिक पत्रों में व एक से अधिक बार छपीं यथा–

'मेरे स्वामी ! शान तेरी क्या से क्या हो जायेगी'

'प्रकाश', 'प्रताप', 'रिफ़ार्मर' आदि कई पत्रों में कई कई बार प्रकाशित हुई। इन पंक्तियों का लेखक अपने विद्यार्थी जीवन से ही 'दयानन्द आनन्द सागर' की पंक्तियां गुनगुनाता चला आ रहा है । मेरे कई विद्यार्थियों ने इसकी चुनी हुई पंक्तियों को मुझ से घुट्टी में प्राप्त किया । **प्रियवर प्राचार्य रमेशचन्द्र 'जीवन'** को मैंने ही कई पद्य कण्ठस्थ करवाय । आज भी ऋषि पर व्याख्यान देते समय जब मैं भाव विभोर होकर ये पद्य सुनाता हूँ–

वह टूटा जो था वेद विद्या पै ताला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥
सिस्कतों को दलदल से जिसने निकाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥
किया मौत ने तेरी हर सू उजाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥
न तलवार चलती है तुझ पै न भाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥
है मा जिसकी नज़रों में मासूम बाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

इन्हें सुनकर भक्त हृदय झूम उठते हैं । दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि जिस पुस्तक के लिए रचयिता को इतना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा–वह

उनके जीवन काल में दोबारा न छप सकी। उनके निधन के कोई चालीस वर्ष पश्चात् श्री जावेद जी ने इसे फिर से प्रकाशित किया परन्तु अधूरा। देवनागरी में इसके कुछ चुने हुए पद्य मुनिवर गुरुदत्त संस्थान हिण्डौन सिटी द्वारा प्रकाशित विचार वाटिका दूसरा भाग में हमने दिये।

सन् १९६३-६४ में श्री स्वामी वेदानन्द जी (स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ से भिन्न एक और बहुत पूज्य संन्यासी बठिण्डा आदि स्थानों पर रहे) की प्रेरणा से हमने 'दयानन्द आनन्द सागर' को देवनागरी अक्षरों का रूप दिया परन्तु स्वामी जी के किसी प्रेमी ने पाण्डुलिपि ही गुम कर दी। कई सज्जनों ने अनेक बार आग्रह किया कि हम इसका सम्पादन करने का एक और प्रयास करें। प्रेमियों का कहा देर तक टाला न जा सका। अपने मन की भी उत्कट इच्छा थी कि यह कार्य करना ही चाहिए। हमारे प्रयास में गुणियों को कई न्यूनतायें मिलेंगी। सुझाने पर अगले संस्करण में सुधार कर दिया जायेगा। **हमने आचार्य चमूपति जी के हृदय में घुसकर एक-एक शब्द व एक-एक पंक्ति में छुपे गम्भीर भावों को समझने का प्रयास किया तथापि हमारे प्रयत्नों में दोष सम्भव है। कारण ? वे वे थे और हम हम हैं।** स्मरण रहे कि यह काव्य आचार्य चमूपति जी ने युवा अवस्था में रचा। इसमें साहित्यिक दृष्टि से आलोचक समालोचकों को कुछ दोष दिखाई पड़ सकते हैं। कुछ दोष तो कातिबों की कृपा का भी फल हैं। प्रत्येक घटना की अन्तिम पंक्ति ऐसे छपी है–

'दयानन्द स्वामी ! तेरा बोल बाला'

यहां स्पष्टतया कातिब ने भूल कर दी है। हम ने इसे सर्वत्र ऐसे दिया है–

'दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला'

उर्दू कविता में **तेरा** को **'तिरा'** करके भी प्रयुक्त किया जाता है। 'दयानन्द आनन्द सागर' में अनेक स्थानों पर तिरा के स्थान पर 'तेरा' छप गया, जो अशुद्ध है। हम ने पाद टिप्पणियों में इसका स्थान स्थान

पर संकेत दे दिया है। कहीं कहीं कातिब के कारण सन् संवत् भी अशुद्ध छप गये। मूल पुस्तक में और भी कुछ स्थूल अशुद्धियां छपी मिलती हैं। छठी घटना 'सच्च झूट की परख' का स्थान **'गढ़ मुक्तेश्वर'** की बजाय 'मुक्तसर' (पंजाब में) छप गया। जब 'दयानन्द आनन्द सागर' रचा गया तब तक ऋषि के जन्म स्थान का पक्का निर्णय नहीं हुआ था। रक्तसाक्षी पं० लेखराम जी के जीवन-चरित के अनुसार ही पण्डित चमूपति जी ने पहली, दूसरी व तीसरी घटना को मोर्वी से जोड़ा है। टंकारा ऋषि का जन्म स्थान है, यह पक्का निर्णय तो इसके प्रकाशन के पश्चात् ही हुआ था। सो इसे हम कोई भूल नहीं मानते। हमें अटल विश्वास है कि प्रभु की कृपा से हमारे द्वारा सम्पादित यह संस्करण अब हमारे जीवन में ही कई बार अवश्य प्रकाशित होगा।

स्मरण रहे कि श्री पण्डित जी ने ऋषि-जीवन की घटनायें इतिहास के क्रम से नहीं दी हैं। ऐसा क्यों न किया ? कुछ कारण होगा ही। हम ने भी इन कविताओं का क्रम बदलना उचित नहीं समझा।

बन्धुवर श्री रमेश जी मल्होत्रा ने श्रद्धा से भरपूर हृदय से अत्यन्त निष्काम भाव से इस पुस्तक को आकर्षक साज सज्जा के साथ सुन्दर रीति से अपनी देखरेख में छपवाया और श्रीयुत जितेन्द्र कुमार जी गुप्त वकील ने जिस धर्मभाव से इसके प्रकाशन में सुरुचि ली उसके लिये मैं इन दोनों को किन शब्दों में धन्यवाद दूं ?

आबाल बृद्ध इस आनन्द सागर में डुबकियाँ लगायें, यह सम्पादक की चाह है।

आचार्यप्रवर चमूपति का चरणानुरागी
राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेद सदन/कविता कुञ्ज,
अबोहर
४-१०-२०००
दूरभाष ०१६३४-२६४०३

दयानन्द मानवता का संगीत

महान् पुरुष किसी उच्च विचार का साकार रूप होते हैं । सिख गुरु नानक को जिस भवना से पूजते हैं । वह भावना गुरु गोविन्दसिंह से नहीं जोड़ी जा सकती[१] । एक भक्ति का मूर्तरूप है तो दूसरा स्वाभिमान का । गुरु नानक को हम भक्ति का संगीत कह सकते हैं तो गुरु गोविन्दसिंह को वीरता का उद्घोष ।

महात्मा ईसा दु:खों के निवारण में अग्रणी है । वह रोतों को हंसाता है, गिरतों को उठाता है और बिन मौत मरने वालों को जिलाता है । बुद्ध वैराग्य की प्रतिमा है । पत्नी पर अन्तिम दृष्टि डालता है । जिगर के टुकड़े ने इसी रात ही तो उजाला देखा है । परन्तु भ्रम के इस उजाले पर यदि मोहित हो तो बुद्ध कौन बने ?

राम पितृभक्ति की स्वयं आप उपमा है । कर्त्तव्य के मार्ग में तपस्या है । दु:खियों की सहायता है, अत्याचारियों पर वज्र है ।

कृष्ण नीति है, बुद्धिमत्ता है, व्यवहार कुशलता है और सफलता का सूत्र । इस प्रकार जिस महापुरुष पर दृष्टि डालें वह गुणी नहीं साक्षात् गुण है । पौराणिक उन्हें निराकार का अवतार कहते हैं । हम उन्हें निराकार सद्गुणों की साकार मूर्ति ।

भक्ति प्रकाश में आना चाहती थी तो नानक बनी । वीरता को रूप रंग की इच्छा हुई-उसे गोविन्दसिंह का रूप मिल गया । मसीहाई का झरोका ईसा हुआ । वैराग्य को साकार रूप लेने की आवश्यकता थी । वैराग्य को बुद्ध का रूप मिला । न्याय का आधार राम बना ।

---

१. 'जनज्ञान' मासिक के अक्तूबर १९९७ के अंक में यह वाक्य बदला गया । यह अदल बदल अनुचित है । हम ने मूल के अनुसार यहां इसे दिया है । **'जिज्ञासु'**

नीति के हावभाव का रूप श्रीकृष्ण ।

दयानन्द किस विचार का चमत्कार था- कौन-सा सद्गुण स्पन्दित हुआ कि उसे दयानन्द के हृदय में स्थान मिली । हां, दयानन्द किस विशेषता का प्रतिरूप था, किस महत्ता का उत्तराधिकारी और किस उच्चता का द्योतक ?

हम ने दयानन्दी तराना सुना है । उसकी लय है । उस बांसुरी पर कान दिया है । इसमें तान है । इस वीणा पर हाथ मारा है । तार हिला है । और उससे अत्यन्त कोमल गीत निकले हैं ।

दयानन्दी तान की लय, दयानन्दी बांसुरी का गान, दयानन्दी वीणा का तार और उसका कोमल गीत क्या है ? कैसा है ? संगीत मर्मज्ञ आयें और समझें । यह गीत कठिन गीत है । इसमें ऊंची नीची सब सुरें हैं और सब मिलाकर एक गीत बनती हैं । यह गीत इतना ही पेचीदा है जितनी कि मानवता, क्योंकि यह मानवता का संगीत है ।

दयानन्द केवल भक्ति नहीं, केवल वीरता नहीं, बन्धुत्व नहीं, एकेश्वरवाद नहीं, सत्यनिष्ठा और विद्वत्ता नहीं । दयानन्द ये सब कुछ है । **किसी को बुरा न लगे तो दयानन्द मानवता है ।**

अवतार अथवा पैग़म्बर ?

दयानन्द ने अवतार होने का दावा नहीं किया । इससे पूर्व भी किसी (ऋषि) ने नहीं किया था । परमात्मा का पुत्र होने का दावा किया और कहा, परमात्मा के सब पुत्र हैं । अपने आपको पैग़म्बर न बनाया। किसी ने कहा, यह न कहो । वेद में ऐसा लिखा है । कहो, परमात्मा ने मुझे ऐसा कहा है । बलिहारी इस मानवता के ! कहा नहीं । इस पैग़म्बरी का अधिकार मुझ अकेले को ही नहीं । सबको है । परमात्मा तो सबको सत्य ही कहते हैं । कोई सुनो भी । सब पर वही (ईश्वरीय वाणी) उतरती है । कोई समझो भी । परमात्मा का प्रथम व पूर्ण और फिर एकमेव ज्ञान वेद है । जो पढ़ लो । वह पैग़म्बर, योगी बन जाओ। पूर्व ऋषियों का सा ज्ञान (इलहाम) होगा । रत्ती भर न्यून नहीं ।

परमात्मा का नायब !

मनुष्य परमात्मा का नायब (Deputy) है। परन्तु कौन सा मनुष्य? पूर्व महापुरुषों ने भी ऐसा ही कहा था परन्तु बन गये थे स्वयं नायब (प्रतिनिधि)। कोई अपनी इच्छा से और कोई मुरीदों (चेलों) के '**मुरीदाँ मे परानन्द**'[१] (चेले गुरुओं को उड़ाया करते हैं) से। मेरे प्यारे ने अपने लिए कोई भी विशेषण स्वीकार न किया। कहा, मेरे वचन को बुद्धि की कसौटी पर कसो। तुम अपने इलहाम पर विश्वास करो। मेरे इलहाम पर नहीं। हाँ! शर्त यह है कि ईश्वरीय ज्ञान के प्राप्तकर्त्ता होना सीखो। बुद्धि को ऐसा ही शुद्ध व निर्मल बनाओ जैसा भगवान् के प्रतिनिधियों की होती है। दयानन्द का कथन है, इस लिए न मानो कि दयानन्द का वचन है। इस कारण मानो कि तुम्हारी बुद्धि का है। मलीन बुद्धि का नहीं। परिपक्व बुद्धि का है। दयानन्द को इसका भय नहीं कि उससे कोई आगे निकल जायेगा। सयाने पिता की भांति उसको प्रसन्नता है कि उसकी सन्तान उससे अधिक योग्य बनेगी।

दयानन्द को इस बात का भय नहीं है कि कोई उससे बढ़ जायेगा। सयाने पिता की तरह उसे इस बात की प्रसन्नता है कि उसकी सन्तान उससे अधिक योग्य बन जाये।

मनुष्य की उन्नति की कोई सीमा है ? उन्नति आध्यात्मिक हो या शारीरिक, असीम है। पूर्ण तो केवल परमेश्वर है। उससे नीचे कोई जो जहां जिस स्थान पर है, उसके लिए उन्नति का मार्ग खुला है।

परमात्मा और आत्मा

नास्तिकों ने परमात्मा की सत्ता मिटाना चाही। कहा कि हम हैं, परन्तु वह नहीं है। इधर (नवीन) वेदान्त का विषय ही परमात्मा की सत्ता था। परमात्मा न हो तो वेदान्त ही न रहे, उन्हें नास्तिकों की बात खटकी। नास्तिकों के विरोध में उन्होंने घोषणा की कि वह (ईश्वर)

---

१. '**पीराँ नमे परन्द मुरीदाँ मे परानन्द**' पीर नहीं उड़ते मुरीद ही उन्हें उड़ा देते हैं। यह एक लोकप्रिय फ़ारसी लोकोक्ति है। '**जिज्ञासु**'

तो है परन्तु हम नहीं हैं । आत्मा की सत्ता एक भ्रम है । भ्रम मिट जाना स्वयं भ्रम का ब्रह्म बनना है । दोनों में प्रतियोगिता हुई और जीते भ्रम वाले, परन्तु विजयी होकर भ्रम और पक्का हो गया । मिटा नहीं, न मिटा तो परमात्मा भी न हुआ । **परिणाम यह निकला कि हम भी भ्रम हो गये और ब्रह्म भी भ्रम रह गया ।**

दयानन्दी मानवता ने ये देखा तो उसका मन्यु जाग उठा, उसने दोनों को ललकारा और कहा कि दोनों का भ्रम मिथ्या है। दोनों की प्रतिज्ञा का स्वीकृति पक्ष सत्य है । मानवता है, इसका प्रमाण तुम्हारी हां और ना दोनों देती है । अपनी सत्ता को स्वीकार करो तो जिसको स्वीकार करो वह मानवता है । अपनी सत्ता से निषेध करो तो जिससे तुम्हें निषेध है वही मानवता है । स्वीकृति भी, अस्वीकृति–भी दोनों मानवता की स्वीकृति हैं । मानवता पूर्णता नहीं उसकी सत्ता उसके अपूर्ण होने की स्वीकृति है । मानवता प्रयास है, प्रयास का फल नहीं । मानवता उन्नति का सोपान है, उंन्नति की पराकाष्ठा नहीं । सोपान को पराकाष्ठा चाहिए। प्रयास को परिणाम चाहिए । अन्वेषण को लक्ष्य चाहिए । वह पराकाष्ठा वह परिणाम, वह लक्ष्य परमात्मा है । यह अमूल्य मोती हाथ आयेगा? नहीं, हाथ बढ़ाते जाओ, पग बढ़ाने में खोज का आनन्द है। यात्रा का आनन्द ध्येय प्राप्ति में नहीं, यात्रा में ही है ।[१]

वहम था जोया को लाहासल है मेरी सा-ई सब ।
और तू पाय रवां में जुस्तजू हो कर रहा ॥

वेद में जीव को क्रतु कहा गया है, अर्थात् कर्मशील, सौ वर्ष से भी अधिक जीने का आदेश है । किन्तु साथ ही कहा है, कर्म करता हुआ जीने की इच्छा कर अर्थात् जो क्षण कर्म के बिना व्यतीत होगा वह जीवन नहीं मृत्यु है ।

नास्तिकों के सम्मुख कोई लक्ष्य नहीं था, इसलिए वह ठहर गये।

---

१. हुतात्मा रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने इसी पुस्तक रत्न से इस विचार को अंगीकार करके यह पंक्ति लिखी–

लज़्ज़ते सहरा नवर्दी दूरीय मनज़िल में है ।

दूरदर्शन व आकाशवाणी से यह गीत गूंजता रहता है । **'जिज्ञासु'**

जीव को ब्रह्म मानने वाले स्वयं को ही अपना लक्ष्य समझ बैठे थे। अतः बैठ रहे थे। जीव उन्नति की इच्छा रखता था, क्योंकि उसका स्वभाव प्रगति करना ही है परन्तु उसके पग ठहरे हुए सैनिक का कालचिह्न मार्कटाइम थे। मानवता के संगीत ने स्वयं ब्रह्म होने का भ्रम भी मिटा दिया और ब्रह्म के निषेध का अज्ञान भी दूर किया। मानवता को प्रयास बनाया, चरम सीमा की खोज बनाया, न रुकने वाली प्रगति बनाया, सतत प्रयत्न बनाया।

मानवता के संघ

मानवता के भी संघ थे, मनुष्य बाल की खाल उतार कर भी सन्तुष्ट न हुआ, अतः ख़्याल की खाल उतारने लगा। मानवता गुण थी। मनुष्य ने उसके टुकड़े किए, कोई ब्राह्मण हुआ, कोई शूद्र, कोई गोरा हुआ, कोई काला, कोई पीला, कोई हब्शी, कोई केशी, कोई मंगोल, छूत-अछूत पवित्र-अपवित्र लाखों समुदाय बन गये। मानवता को पीड़ा हुई कि मुझे काटा जा रहा है, स्वस्थ और पूर्ण देह पर शस्त्र चलाये जाते हैं। एक चीत्कार हुआ अत्याचार न करो, स्वयं अपने ऊपर दया करो। रूप चाहे लाख हों परन्तु मानवता एक है। मनुष्य जब तक मनुष्य है अछूत नहीं हो सकता। उसका परमात्मा से सीधा सम्बन्ध है। वह वेद पढ़ सकता है। परमेश्वर का अमृत पुत्र कहला सकता है। **मानवता ब्राह्मण होकर वेद नहीं पढ़ती, वेद पढ़ कर ब्राह्मण बनती है।** गोरा वह है जिसका हृदय निर्मल है, विचार पवित्र है, वचन शुद्ध और आचरण पवित्र है।

साफ़ दिल हो, रंग है काला तो क्या ?
ख़ाक का पुतला है मटियाला तो क्या ?[१]

राम और कृष्ण दोनों सांवले थे। परन्तु मानवता का रंग गोरा था, अतः गोरा लक्ष्मण और गोरा बलराम उन दोनों की छाया के समान रहे।

---

१. ये पंक्तियां श्री पं० चमूपति की स्वरचित हैं। **'जिज्ञासु'**

स्त्री ? पुरुष ?

दयानन्द ने विवाह नहीं किया । गृहस्थी न बना । स्त्रियों से दूर रहता था । परन्तु पुत्र तो एक स्त्री का ही था । स्त्री उसकी मानवता का एक अंग थी । कर्णवास में एक बुढ़िया उसके चरणों में आई और उपदेश चाहा । दयानन्द ने कहा गायत्री का जाप किया कर, बुढ़िया चकित रह गई । स्त्रियां और मन्त्र ? मानवता के पुतले की आंखों में आंसू आ गये । कहा बलवानों ने अबला की कोमलता को दुर्बलता में बदल दिया है । लगे हाथ उसे जीवन के अधिकारों से भी वंचित कर दिया है । स्त्री मृदु, सौम्य है, स्वयं परमात्मा भी मृदु है । ज्ञान भी मृदु है । और सौम्य का सौम्य पर अधिकार है । स्त्री धर्म की रक्षक है और आज हम उसे धर्म से बाहिर किए बैठे हैं । मानवता की वृद्धा माता ! तू प्राचीन मानवता का अधिकार ले । वाक् और श्रद्धा के समान वेदवाणी पर अधिकार कर और उसके माधुर्य की (सरिता) संसार में बहा । किसी देवी ने समाधि में माथा टेका तो प्रायश्चित किया । दो दिन भूखे रहे। छोटी बच्ची को माथा झुकाकर प्रणाम किया । मानवता ने मानवता के स्रोत को पहचाना औ उसके महत्त्व के सम्मान से स्वयं को सम्मानित और महत्त्वशाली बनाया ।

स्वतंत्रता और अनुशासन

दयानन्द स्वतन्त्रता का देवता हैं । वह स्वतन्त्रता को मानवता का प्रथम अधिकार मानता है । पशु बन्धन से वश में आता है, मनुष्य उन्मुक्त होने से । उसका बन्धन उसकी स्वतंत्रता की भूमिका है । बच्चे को अंगुली से पकड़ते हैं इसलिए कि उठ सके । सिधाना-सिखाना स्वतंत्र मानवता का राजपथ है । उच्छृङ्खल होना स्वतंत्रता नहीं । न ही ज़ंजीरों से बांधना शिक्षा का साधन है । **स्वतंत्रता में बन्धन है और बन्धन में स्वतंत्रता है ।** दयानन्द का परमात्मा अपने नियमों में आबद्ध है । वह किसी उच्छृङ्खल परमात्मा का उपासक नहीं । दुष्टों के लिए नियम बन्धन है परन्तु सज्जनों के लिए नियम स्वतंत्रता है । दयानन्द का परमात्मा

अपने नियमों में आबद्ध है । वह किसी उच्छृङ्खल परमात्मा का उपासक नहीं, स्वतंत्र मानवता नियम बनाती है और नियम के आधीन रहती है। उसकी दृष्टि में नियम भंग पतन है बड़प्पन नहीं । शिक्षित आत्मा स्वभावत: स्वतंत्र है और नियम पालन उसका स्वभाव है ।

तपस्या ? विश्राम ?

लोग नई सभ्यता पर मोहित हैं । दयानन्द ने प्राचीन सभ्यता को पुकारा, आ ! वह पर्वतों से निकली और तपस्या बन गई । संसार ने शारीरिक सुखों को सभ्यता समझा था । उसने तपस्या की पराकाष्ठा प्रस्तुत की और कहा कि वास्तविक सभ्य वनों में रहते हैं । **पर्वत जंगलियों के घर नहीं, सभ्य लोगों की कुटिया हैं । अफ़्रीका के मरुस्थल में मानव-भक्षी हैं तो नगरों की मण्डियों में भी मानव-हत्यारे हैं ।** वनों में दास नहीं बिकते । पैसे देकर मानवता की छुट्टी करना नगरों की रीति है, वनों की नहीं । किसी के हाथ से जूता पहनना जहां अपने परिश्रम की मनुजता को भगाना है, वहां दूसरों के स्वाभिमान की मनुजता को जूता मारना है । प्रतिदिन की आवश्यकता के लिए पराश्रित लंगड़े हों, लूले हों । स्वस्थ निरोग क्यों परालम्बी हों ?

'सादिक' ! देख घोड़ा हिनहिनाता है, साईस उपस्थित नहीं है । उसे पानी कौन पिलाये ? स्वामी सेवक को बुलाता है । सेवक नहीं है । उसे जल कौन पिलाये ? साईस बाल्टी लाये तो घोड़े की प्यास बुझे । सेवक गिलास दे तो स्वामी की व्याकुलता मिटे । **पशुता कहां है ? वनों में ? नगरों में ? वनों नगरों की क्या बात है । जहां तप नहीं, श्रम नहीं, वहां मानवता नहीं ।**

स्वामी राजाओं का राजा था । उदयपुर के राणा आते हैं तो धरती पर बैठते हैं । क्योंकि गुरु के सम्मुख शिष्य का आसन धरती ही है । परन्तु गुरु की सरलता देखिये । भ्रमण से लौट रहे हैं गाड़ीवान की गाड़ी कीचड़ में धंस गई है, निकाले नहीं निकलती । मेरा कुन्दन जैसा स्वमी कीचड़ में उतरता है और बैलों को खोलकर स्वयं गाड़ी खींचता है । इस सभ्यता के न्यौछावर और इस मानवता के बलिहार । सरवरे

मख़लूकात ने तो (जीव जगत्) संसार को सताने में अपना बड़प्पन जाना। मेरे मानव संन्यासी ने कहा नहीं ! बड़पप्न रक्षा करने में है ।

राष्ट्रीय कार्यों में विद्वानों का गुरु, सामाजिक क्षेत्र में समाज का पथ प्रदर्शक, उद्योगधन्धों में उद्योगपतियों का मार्ग-दर्शक, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में गोखले का भी नेता कौन था ? वही मानवता का संगीत है, जिसे दयानन्द कहते हैं ।

शरीर ? आत्मा ?

कोई शरीर को सुखाता था, कोई शरीर को जलाता था । शरीर का घटाना आत्मा की उन्नति समझा जाता था । उधर कोई-कोई अपनी इन्द्रियों को ही आत्मा बता रहा था । शारीरिक सुखों को आत्मिक आनन्द का पर्याय बतला रहा था । एक ओर सुख का दर्शन था तो दूसरी ओर दुःख का । पहले को पढ़ा तो प्रसन्न हो गये । दूसरे का अध्ययन किया तो आंसू बहा दिये । मिठास बढ़ते-बढ़ते कड़वी हो गई । दर्द पराकाष्ठा पर पहुंचा तो दवा बन गया । मिठास का इच्छुक मिठास से वंचित रहा और पीड़ा का अभ्यस्त पीड़ा से । शान्ति न यहां थी न वहां थी ।

मानवता की तार हिली उससे तान निकली । शरीर आत्मा का कवच है । इन्द्रियां शस्त्र हैं । उनके बिना न शत्रुओं से युद्ध हो सकता है और न व्यक्तित्व की सुरक्षा । शारीरिक कोमलता आत्मा की स्वच्छता नहीं । घटाने का नाम क्यों लेते हो दोनों को बढ़ाओ । भीतर की आंखें बाहर के नेत्रों की अपेक्षा रखती हैं । उपनेत्र लगाना विद्वत्ता का सूचक नहीं । सूखी हड्डियों से तपस्या क्या होगी ? **मेरे स्वामी ने एक हाथ से बग्घी को रोका और दूसरे से दिल को । पहलवान उसकी बलिष्ठ भुजाओं को न झुका सके तो वेश्या उसके मन को न डिगा सकी।**

व्यष्टि ? समष्टि ?

लोग संसार से मुख मोड़ते और ईश्वर से नाता जोड़ते हैं । जैसे ईश्वर संसार से दूर है । किसी कुटिया में बन्द है, नगर में नहीं रहता। निवृत्ति रखता है, प्रवृत्ति नहीं । स्वामी ने नदी के तट से मन हटाया,

पर्वतों की गुहाओं में आसन उठाया कि यहां तरंगे हैं, सर-सर है । मन की एकाग्रता नहीं रहती । अपने मन को हृदय कुटी में स्थिर किया, न कोई दूसरा होगा न एकाग्रता मिटेगी । समाधि के आनन्द लिये, आत्मा ने आत्मा को देखा । आनन्द हुआ शान्ति हुई परन्तु पूर्णरूपेण परमेश्वर के दर्शन न हुए ।

नगरों से शोर उठा इधर आओ, खेतों से आवाज़ आई हमें देखो, यहां परमात्मा है । व्यवसायी के व्यवसाय, कृषक की खेती, राजाओं का राज, सन्तों की मस्ती किसके कारण से हैं ? आज तक विश्राम करने वाले परमात्मा को देखा है तो काम करने वाले परमात्मा को भी देख । निठल्ले के दर्शन किए हैं तो व्यस्त के भी कर । मौन समाधि लगाई है तो कोलाहल की समाधि लगा । कोलाहल में समाधि है इस कोलाहल में भी एकाग्रता है ।

स्वतंत्र ? परतंत्र ?

मानव समाज के दस नियम बने, पांच व्यक्तिगत जीवन के लिए और पांच सामाजिक जीवन के लिए । एक पहेली थी जिसे कोई न बुझाता था । एक बुझारत थी जो किसी की समझ न आती थी । यहां घोड़े के बिना गाड़ियां चलती थीं । समुद्र राजमार्ग बन गये थे । लोग हवा में उड़ते थे । आवाज़ें दौड़ती थीं । दीवार के पार की वस्तु कंधार के पार न थी । मनुष्य की दृष्टि पर्वतों को चीर गई थी । सब कहते थे मनुष्य स्वतंत्र है । प्रकृति सेविका है । मनुष्य स्वामी है ।

परन्तु फोड़ा निकला और अच्छा न हुआ । घाटा पड़ा और पूरा न हो सका । मृत्यु आई और टाले न टली । जब प्रयासों में असफलता देखी तो झट बोले मनुष्य परतन्त्र है और भाग्य की याद आई । निकम्मे हो बैठे । कभी पुरुषार्थ सूझा तो जानतोड़ परिश्रम किया । इस प्रकार जीवन परस्पर विरोधों का संगम हो गया ।

मानवता की पहेली का समाधान मानवता ने किया । और कहा कि कर्म करने में स्वतंत्र और फल भोगने में परतन्त्र, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के कुछ नियम हैं । उसके आधीन हम भी हैं सर्वशक्तिमान् भी । दोनों

अनादि और अनन्त हैं। पुण्य का आदेश भगवान् करते हैं। परन्तु आचरण करने का बोझ हम पर है। कर्म करना जीव का स्वभाव है। पुण्य-पाप का अन्तर परमेश्वर की कृपा से पता लगता है। इसके पश्चात् हमारी पसन्द है। बुराई भी भगवान् के पल्ले मढ़ना और भलाई भी। यह सर्वशक्तिमान् की महिमा का बढ़ाना नहीं। पुण्य और पाप सदा से थे क्योंकि जीव सदा था। **यदि जीव का आरम्भ हो तो परमात्मा उससे पहले होगा। तब पाप कहां से आ गया ?** जीव की स्वतंत्रता अनादि काल से है जैसे उसकी परतन्त्रता अनादि काल से है। कर्म वह स्वेच्छा से करता है परन्तु फल पाने में उसकी इच्छा नहीं पूछी जाती। वर्तमान जीवन के दु:ख जीव के पूर्व जीवन के कर्मों का फल हैं। जो हमने बोया है उसका फल हमें हर मूल्य पर काटना होगा। अत: वर्तमान जीवन के दु:खों को प्रसन्नता से सहना और भविष्य के लिए शुभ कर्मों की खेती करना ये जीवन की परतन्त्रता और स्वतंत्रता दोनों हैं। दोनों में वीरता है और दोनों में मानवता।

आवागमन का दर्शन हमें आलसी नहीं बनाता, निराशा नहीं पैदा करता-ये दर्शन हमें धीरता और वीरता देता है। भाग्य के आगे हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना और पुरुषार्थ के पांव में ज़ंजीर डाल देना ये मानवता के संगीत के विरुद्ध था। उसने स्वतंत्रता और परतन्त्रता के स्वर के आरोह-अवरोह को एक किया और राग का सुर मिला दिया।

सरगम

१. दयानन्द परमात्मा न था, यह नीचा सुर था। दयानन्द परमात्मा का प्रतिनिधि था जैसे हम हैं, ये ऊंचा सुर था।

२. दयानन्द पूर्ण न था, ये नीचा सुर था। दयानन्द पूर्णता का प्रयास था ये ऊंचा सुर था।

३. दयानन्द ने ब्राह्मण को मनुष्य कहा, ये नीचा सुर था। दयानन्द ने शूद्र को ब्राह्मण बनाया, ये ऊंचा सुर था।

४. दयानन्द ने पुरुष को पुरुष कहा, ये नीचा सुर था। दयानन्द ने स्त्री को पुरुष की माता बताया, ये ऊंचा सुर था।

५. दयानन्द ने तपस्या को सभ्यता कहा, ये कठोर सुर था। दयानन्द ने शरीर को आत्मा का कवच कहा, ये कोमल सुर था।

६. दयानन्द व्यक्ति हुआ, ये पतला सुर था। दयानन्द समाज बन गया, ये मोटा सुर था।

७. दयानन्द फल भोगने में परतन्त्र रहा, ये मद्धम सुर था। दयानन्द कर्म करने में स्वतंत्र था, ये ऊंचा सुर था।

संगीत क्या था पूरी सरगम थी। दयानन्द ने ये संगीत सुना, गाया और स्वयं संगीत बन गया। हम संगीत विद्या में सिद्धहस्त नहीं हैं। इस लिए पूरा ताल नहीं समझे। मर्मज्ञ आएं और संगीत को पहिचानें तथा अपनी समझ के अनुसार दाद दें (मूल्याङ्कन करें)।

—चम्पतराय

***

पण्डित जी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लों में से एक

जिस मौत से दुनिया प्यार करे

ऐ दुनिया बता इससे बढ़कर फिर और हकीकत[1] क्या होगी ?
जाँ दे दी तलाशे हक[2] के लिए फिर और इबादत[3] क्या होगी ?

यूँ तो हर रात की तारीकी,
देती है प्याम उजाले का ।
जिससे यह जहाँ पुरनूर हुआ,
उस रात की कीमत क्या होगी ?

ज़हरें भी पिलाईं अपनों ने, खंजर भी चलाए अपनों ने ।
अपनों के यह एहसाँ क्या कम हैं, ग़ैरों से शिकायत क्या होगी ?
औरों के लिए मरने वाले, मर कर भी हमेशा जीते हैं ।
जिस मौत से दुनिया प्यार करे, उस मौत की अज़मत[4] क्या होगी ?

सदियों की ख़िज़ाँ[5] के बाद खिला,
इक फूल उसे भी तोड़ लिया ।
कलियों के मसलने वालों से,
फूलों की हिफ़ाज़त क्या होगी ?

इस हिम्मतो जुर्रत के सदके, इस जज़्बाए 'सादिक' पै कुर्बां[6] ।
हक की ख़ातिर इससे बढ़कर बातिल से बग़ावत क्या होगी ?

---

१. सचाई (Reality), २. सत्य की खोज में, ३. उपासना, ४. महिमा, बड़ाई, ५. पतझड़, ६. इस साहस व शौर्य पर वारी, इस सत्यनिष्ठा, सद्भावना पर बलिहारी ।

टिप्पणी–१. यह गीत ऋषि बोध पर्व शिवरात्रि पर भी गाया जा सकता है और दीपमाला–ऋषि के बलिदान पर्व पर भी इसे गा सकते हैं । शिवरात्रि व दीपमाला दानों पर्वों पर अमावस्या (अंधेरा) होता है ।

२. अपने परिचय में 'क्या कहूँ ?' गीत में कवि ने स्वयं को वलवला, जनूँ और नाला (जोश, दीवानापन और रुदन) बताया है । इस ग़ज़ल में कवि का यह स्वरूप, ये तीनों रूप देख सकते हैं । **'जिज्ञासु'**

नमः सत चित्त आनन्दाय

ज़बां तेरी तौसीफ़ में नग़माज़न[१] है ।
कलम हमद[२] से तेरी तूती दहन[३] है ॥
हरि[३] नाम से तेरे शाख़े सुख़न[४] है ।
नमस्ते मेरे लब[५] पै परमात्मन है ॥

मुझे फ़ैज़ से अपने मख़मूर[६] कर दे ।
सुख़न ज़ौके अरफ़ाँ से मामूर कर दे[७] ॥

मुझे आज करना है अज़कारे स्वामी[८] ।
ज़बाँ में मेरी भर दे गुफ़तारे स्वामी[९] ॥
करूँ जलवा पैरा वोह अनवारे स्वामी[१०] ।
कि हो साफ़ सामा[११] को दीदारे स्वामी ॥

सदाकत को पैराहने ज़ौक दे दूँ ।
दिल गर्म को दीदाय शौक दे दूँ ॥

तू ऐ कलक[१३]! स्वामी के चरणों में झुक जा ।
दो ज़ानू हो, दे पाक आसन को बोसा[१४] ॥
नहीं लायके शाँ कोई और तोहफ़ा ।
मदीहत[१५] की दो चार लड़ियाँ पिरो ला ॥

बहुत तेरे हिस्से रही रूस्याही[१६] ।
स्याही तेरी आज हो रोशनाई ॥

दयानन्द का नाम आया ज़बाँ पर ।
हुआ लुत्फे गोयाई[१७] क्या क्या निछावर ॥

हलावत थी हरफ़ों[१९] में अमृत से बढ़कर ।
मज़ा चूसा होंटों ने लज़्ज़त में पड़कर ॥

कहा दिल ने यह चाशनी[२०] मुझ को देना ।
अकीदत ने टोका ज़रा सोच लेना[२१] ॥

---

१. गुण-कीर्तन, २. प्रशंसा, ३. वाणी व लेखनी दोनों तूती के गाने जैसी मधुर हैं ।, ३. हरि संस्कृत में ईश का नाम है और भाषा में हरी, हरियाली का वाचक है ।, ४. वार्तारुपी टहनी, ५. अधरों पर, ६. कृपा से मस्त कर दे, ७. वाणी को ब्रह्म ज्ञान की चाह से परिपूर्ण कर दे, ८. स्वामी का गुण वर्णन, ९. स्वामी के कथन, उसी की चर्चा, १०. ऋषि के गुणों की किरणों को सुन्दरता से प्रकट करुँ, ११. श्रोता, १२. जो कुछ लिखूँ तथ्य पर आधारित हो, ऐतिहासिक हो, अतिशयोक्ति न हो । कवि का काम तो घटनाओं को छन्दोबद्ध करना है और कुछ नहीं ।, १३. लेखनी, १४. लेखनी लिखते समय झुककर–घुटनों के बल ही लिखती है । ऋषि के चरणों को चूम ले, १५. स्तुति, १६. लेखनी का मुख स्याही के कारण काला ही होता है । स्याही को उर्दू फ़ारसी में रोशनाई भी कहते हैं । इसका अर्थ सुन्दरता, उज्ज्वलता व ज्योति है । ऋषि के गुणगान से लेखनी का काला मुंह सुन्दर हो जायेगा, १७. वर्णन का आनन्द, १८. मिठास, १९. अक्षरों, २०. माधुर्य, २१. श्रद्धा ने कवि को टोका कि भक्तिभावों में बहकर अन्धश्रद्धा का शिकार न हो जाना । सोच समझकर लिखना । महामानव दयानन्द को अवतार अथवा पैग़म्बर न बना देना । उसके गुणों का यथार्थ वर्णन ही करना ।

संवत् १८८१ विक्रमी मोरवी राज्य गुजरात प्रदेश

१. वेदों वाले का जन्म

है गुजरात में मोरवी[१] नाम नगरी ।
है पास उसके बहती मच्छोकाटा नदी ।।
था मुद्दत[२] से कायम वहां राज देसी ।
महाराज[३] की थी वहां राजधानी ।।
जमादार[४] थे अम्बाशङ्कर वहां के ।
वसूल उस अलाका का महसूल[५] करते ।।
ज़मीनें वसी-अ[६] उनके रक्बे[७] थे आबाद ।
थे मुमताज़ सरकार आबाओ अजदाद ।।
शरीफ़ उनके हमदम[८], शरीफ़ उनकी औलाद ।
खुशी के थे सामाँ खुशी की थी रूदाद ।।

ओदीच[९] उनकी थी ज़ात, आला ब्रह्मण ।
सदा सामवेद उनके घर में नवाज़न[१०] ।।

महादेव भोले के सच्चे भगत थे ।
सदा ताज़ा जल पिण्ड पर थे चढ़ाते ।।
अकीदत के रासख़ इबादत के पक्के[१२] ।
कभी नागा पड़ता न पूजन में उनके ।।

रही धर्म में उनको अपनों से सब्कत[१३] ।
धनी अज़्म का जानती थी रअय्यत[१४] ।।

ज़माने में तब धर्म का हाल क्या था ।
अधर्म अच्छा[*] था, धर्म उससे बुरा था ।।

कोई ध्यान में अपने परमात्मा था ।
कोई वहम की ज़द में भटका खुदा था[१५] ।।

खुदा को न थी कुछ समझती खुदाई ।
था बन्दों को खुद दावाय किबरियाई[१६] ।।

न था एक पत्थर का बुत माबदों[१७] में ।
कहीं जल कहीं थल था शामिल बुतों में ।।
कोई ऐसी सूर्त न थी सूर्तों में ।
जिसे सिजदा[१८] करते न जाहिल घरों में ।।

समझ पर था पर्दा पड़ा आदमी की ।
थी याँ ख़ौफ वाँ वहम की बुतपरस्ती[१९] ।।

था ईसा के बचनों को ईसाई भूला ।
दस अहकाम मूसा के मूसाई भूला[२०] ।।
ब्रह्मण था वेदों की यक्ताई भूला[२१] ।
था वहदत[२२] का गुर मुसलमाँ भाई भूला ।।

कहीं आदमी मिसले रहमान पुजते[२३] ।
कहीं कबर में साये इनसान पुजते ।।

थे लड़की का अपनी चढ़ावा चढ़ाते[२४] ।
छुरी बेधड़क बे जबाँ पर उठाते ।।
बहाने से देवी के थे जुल्म ढाते ।
खुदा के लिये मार कर आप खाते ।।

रही जब न अकल आदमी की ठिकाने ।
गये बन जहालत के लाखों बहाने ।।

रहो रस्म[२५] बाकी न थी आर्यों की ।
यह कौम अपना नामे निको[२६] खो चुकी थी ।।
सभी इसको समझे थे जंगल का वहशी[२७] ।
यह मिल्लत थी गहवारा बदमज़हबी[२८] की ।।

न था वेद का तार पक्का जनेऊ ।
बंधे फिरते थे कच्चे धागे से हिन्दू ।।

उड़ाई थी तहज़ीब ने जिनकी चुटिया ।
उन्हें सिर मुंडाते था ओलों से पाला ।।
उन्हें जिस तरफ़ जिसने चाहा घसीटा ।
कोई गुर न था जिस पै हिन्दू ठहरता ।।

करोड़ों थे उनमें अछूत अपने भाई ।
यह कहते थे माओं को पाओं की जूती ।।

गुज़र जब गई हद से अपनी ज़लालत[३०] ।
ठिकाना हुआ ख़ल्क का कारे ज़िल्लत[३१] ।।
हुई अपनी हालत यह ग़ैरों को रिकत[३२] ।
सदा उठी हरसू बर्स अबरे रैहमत[३३] !

सवाबत को सक्ता सयारों को चक्कर[३४] ।
ज़मीं ओ ज़माँ पर न था चैन दम भर ।।

फ़रिश्तों में सरगोशियाँ[३५] हो रही थीं ।
सितारों की आँखें ज़मीं पर लगी थीं ।।
फ़ल्क पर सदा बिजलियाँ कूँदती थीं ।
न पड़ती थी कलु मुन्तजिर फैज़[३६] की थीं ।।

वोह उठी, घिरी, हिन्द पर बर्सी बदली ।
भरी मूल शंकर ने माता की झोली ।।

सिर आंखों पै लीं सबने वोह अच्छी घड़ियां ।
स-आदत[३७] निसार उन पै और युमन कुर्बा[३८] ।
हवेदा[३९] थे क्या क्या मुस्सर्त के सामां[४०] ।
मनाईं सब आफ़ाक[४१] ने मिल के खुशियां ।।

बजे अम्बा शङ्कर के घर शादयाने ।
जलाय दीये घी के अर्ज़ो समा ने[४२] ।।

उठा शोर जयकार का हर तरफ़ से ।
हुआ साज़ त्यौहार का हर तरफ़ से ।।
था ग़ुल वेद परचार का हर तरफ़ से[४३] ।
था नारा नमस्कार का हर तरफ़ से ।।

वोह आया ज़मीं पर ऋषि वेद वाला[४४] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. इस कविता की रचना के समय तक मोरवी नगर को ही ऋषि का जन्म स्थान समझा जाता था । टंकारा में ऋषि का जन्म हुआ। यह कुछ वर्ष पश्चात् खोज से निर्णय हुआ ।

२. बहुत लम्बे समय से, ३. राजा की, ४. उत्तर भारत में तहसीलदार कहा जाता है, ५. भूराजस्व, ६. विस्तृत, ७. क्षेत्रफल, ८. मित्र, ९. ओदीच्च ब्राह्मण, १०. सामगान होता था, ११. भंग पीने से शिवजी को मस्त, भोला माना जाता है, १२. श्रद्धाभक्ति दोनों में सच्चे व पक्के थे, १३. आगे, बढ़चढ़कर थे, १४. प्रजा जानती थी के यह धुन के निश्चय के धनी हैं , १५. नवीन वेदान्ती मानते हैं कि हम ब्रह्म हैं । भ्रमवश स्वयं को जीव समझे बैठे हैं, १६. किबरिया अल्लाह का एक नाम है। मनुष्य ही खुदा बन बैठा था । कादियाँ का मिर्ज़ा गुलाम़ अहमद तो खुदा का भी बाप बन गया था । १७. मन्दिरों में, १८. नमन, १९. भय व भ्रम दोनों से माथा रगड़ते थे । २०. पर्वतीय उपदेश । २१. वेदों की महिमा, अनुपम ज्ञान, २२. एकेश्वरवाद, २३. दयालु, प्रभु समान ।

२४. देवदासियों की कुप्रथा, २५. आर्यों का पुरातन सनातन चलन न रहा, २६. नेक नाम–आर्य शब्द का अर्थ ही श्रेष्ठ Gentleman है।, २७. असभ्य, २८. यह जाति अब धर्म व सभ्यता की बजाय अधर्म का, कुरीतियों का झूला बन चुकी थी, २९. किसी भी सिद्धान्त पर हिन्दू एकमत नहीं थे, ३०. मार्गभ्रष्टता,३१. पतन की गहरी खाई, ३२. बेगानों को भी दया आती थी, ३३. प्रभु की दयावृष्टि के लिए सब ओर से पुकार होने लगी, ३४. जड़ तारे वैसे गतिहीन हैं परन्तु सितारे ग्रह उपग्रह तीव्र गति से चक्कर काटते हैं । यह कवि की कल्पना है, ३५. कानाफूसी, ३६. कृपा की प्रतीक्षा में थीं ।

३७. सौभाग्य वारी बलिहारी हो रहा था, ३८. वृद्धि-सौभाग्य, ३९. प्रकट, ४०. हर्षोल्लास की सामग्री, ४१. आकाशों, लोक, ४२. आनन्द मनाया गया। धरती व अम्बर सब में प्रसन्नता के कारण घृत के दीपक जलाये गये, ४३. ऋषि का जन्म जीवन सब वेद प्रचार के लिए था अतः सब ओर वेद-प्रचार की पुकार व शोर था, ४४. मेरे सामने इस समय यह खोज का विषय है कि वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द जी को वेदों वाला सर्वप्रथम किसने लिखा व कहा। मथुरा की महर्षि की जन्म शताब्दी पर दो गीतों की धूम थी–

१. वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।

२. वेदाँ वाल्या ऋषिया तेरे आवन दी लोड़

दूसरा पंजाबी गीत किसकी रचना है ? यह पता नहीं चल रहा। लगता यही है कि यह मधुर गीत भी शताब्दी के अवसर पर रचा गया था। पं० चमूपति जी ने इस जन्म शताब्दी से कोई आठ वर्ष पूर्व इस कविता में ऋषि को 'वेदों वाला' लिखा। वह ऋषि था ही वेदों वाला। यह कवि के चिन्तन का चमत्कार है कि 'वेदों वाला' व दयानन्द दोनों पर्याय बन गये। 'रंगीला रसूल' ऐतिहासिक कृति में भी ऋषि को 'वेदों वाला' ही बताया गया। **'जिज्ञासु'**

विक्रमी संवत् १८९४ मोरवी

२. शिवरात्री

जो चौदह बरस का हुआ मूल का सिन[१],
सिखाया गया उनको शिवजी का पूजन।
वो शिव जिसका कैलास पर है नशेमन[२],
सदा जिस की रहती है दैतों से अनबन ।
बनाकर जो लिंग उसका यां पूजते हैं,
सुधर लोक और परलोक उनके गये हैं ।
ख़याल अम्बाशंकर को दिन रात ये था,
भगत मूलशंकर हो शंकर का सच्चा ।
हमेशा करे शिव की तनमन से पूजा,
चढ़ाया करे उस पै जल बे महाबा[३] ।

कभी उसको ले जाते शिव की कथा में ।
सुनाते कभी घर में शम्भू की बातें ।।

हिमाला ससुर है, कभी कहते उसको,
उमा ने उसे सौ रियाजत्[४] से पाया ।
जटाओं में उसकी समाई जो गंगा,
पता उस का बरसों न आलम को सूझा ।
कई दैत धरती पै उसने लिटाये,
हुआ काम आगे तो भूना नज़र से ।
तुम ए मूल! मिट्टी का इक पिण्ड घड़कर,
चढ़ाया करो रोज़ ताज़ह् जल उस पर ।

जो शिव मेहरबाँ हो तो फिर किसका है डर,
नहीं देवता कोई शम्भू का हम सर[५]।

सुनाई ये अन्जान बच्चे को बातें।
गई दिल में कर मूल के घर ये घातें[६]॥

इस आसन[७] में रात आई शिवरातरी की,
जो रातों में मशहूर है घुप अन्धेरी।
यही रात रातों में है शिव की प्यारी,
बरत रखते हैं इसमें शिव के पुजारी।
कहा मूल से बाप ने आज बेटा,
गँवाओं न ये वक्त है रतजगे का।
रुकावट हुई मामता माँ की लेकिन,
कहा मूल के दूध पीने के हैं दिन।
भला रतजगा कब है बच्चों से मुम्किन,
है खुश भोले बालों से भोला बरत बिन।

ये तकरार माँ बाप में हो रहा था।
कहा मूल न मैं उपासक हूं शिव का॥

सरे शाम मन्दिर में आये पुजारी,
गये साथ अब्बा के वां मूल जी भी।
शिवाले की सजधज थी उस रात अनोखी,
कभी मूल ने ऐसी रंगत न देखी।
कोई आके बाहिर से घण्टा हिलाता,
कोई शिव पै फूलों की माला चढ़ाता।
ज़मीं पर कोई हाथ जोड़े पड़ा था,
कोई शिव के आगे दुज़ानू[८] खड़ा था।
कोई मीठे मीठे भजन गा रहा था,
नशे में कोई भंग के झूमता था।

गरज़ आधी रात इन झकोलों में गुज़री ।
शिवाले में तब नींद भेंट अपनी लाई ॥

कोई जाके मन्दिर के आंगन में सोया,
कोई बल से बूटी के कैलास पहुंचा ।
कोई भंग के रंग में ऊंघ लेता,
कोई शिव के चरणों में बेख़ुद पड़ा था ।
गरज़ शिव की धुन में गये सो पुजारी,
रहा रतजगा सिर्फ़ सपनों का जारी ।
इधर रात सुनसान उधर सूना मन्दिर,
न पत्ते का खड़का न आवाज़े सरसर ।
ख़ामोशी थी छाई हुई बाहिर अन्दर,
निगह टिक गई मूल की ख़ूब शिव पर ।

पहर भर में कटने को थी रात काली ।
जो नींद आई पानी के छींटों से टाली ॥

सदा एक जानिब[९] से खट खट की आई
जो देखें तो है गणपति की सवारी
वही रंग भूरा वही थोथी काली
न हाथों में दीपक न डण्डवत न फेरी

बहुत कुर्ब[१०] पर गणपति के था भोला
लपक कर गया शिव के चरणों में चूहा

लगा बे ख़तर भोग को मुंह लगाने
उठा पाओं से जा पधारा सिरहाने
चढ़ा बिन धुले पाओं से शिव के ऊपर
यह दिल शिव का था बल न आया जबीं पर[११]

न झंकार से झांझ की शिव था रीझा
न मीठी सुरों पर पसीजा[१२] दिल उसका

कलेजा हुआ उसका क्या जल से ठण्डा
मशाम उसका खुशबू से महका न महका[१३]
यह क्या भोलापन है, चढ़े सिर पै चूहा
महादेव का इससे ठनके न माथा

कहा क्या यही शिव है त्रिशूलधारी
इसी को है कहता जहां अंधकारी[१४]
इसी से हैं डरते डराते पुजारी
इन्हीं को है क्या पूजती ख़ल्क सारी

है ज़िल्लत बड़ी इस कदर ख़ार होना[१५]
है लाज़िम खुदा को भी खुद-दार होना[१६]

बड़े बेखुद अब्बा[१७] थे उनको जगाया
कहा मैं उपासक नहीं ऐसे शिव का
गये घर, कहा माजरा[१८] माँ से सारा
ब्रत तोड़ कर सो गये बे तहाशा

ग़रीक[१९] और सब भंग के थे नशे में
फ़कत मूश बेदार[२०] था रतजगे में

वही एक समझा महादेव क्या है ?
यह लिङ्ग उसकी हैय्यत[२१] से बिल्कुल जुदा है
इसे भोग से क्या यह हिस्सा मिरा है
मिरा अन्नदाता मुझे दे रहा है

यह पत्थर खुदा भंगड़ों का है नकली
अजब क्या जो ब्याहे हिमाला की लड़की

नज़ारा यह अज़ों समा[२२] देखते थे
सब अंधेर शिवरात का देखते थे

दिया एक दिल में जला देखते थे[२३]
यह कहते थे जो बरमिला[२४] देखते थे

किया जिसने शिवरात्रि में उजाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।

---

१. आयु, २. घर, निवास ३. अगणित, अनन्त, ४. पूजा में, ५. तुल्य, ६. चोट, असर, ७. अवस्था, हालत, ८. घुटनों के बल, ९. दिशा, १०. निकट, ११. माथे पर, १२. पिघला, १३. उसके रोम सुगन्धित न हुए, १४. शिव जी ने अंधक दैत्य को मारा इससे उनका नाम अंधकारी पड़ गया, १५. इतनी दुर्गति बहुत बड़ा अपमान है, १६. भगवान् को भी स्वाभिमानी होना चाहिए, १७. पिता बेसुध थे, १८. कहानी, १९. डूबे हुए, २०. केवल एक चूहा ही रतजगे में जाग रहा था, २१. उसकी सत्ता व स्वरूप से, २२. धरती व आकाश, २३. ऋषि के हृदय में ज्योति जग गई, २४. खुल्लम खुला—स्पष्ट देख रहे थे ।

संवत् १९०३ मोरवी

३. जंगल को

दिया है तो ए मर्ग ! राहे बका का[१] ।
कोई मर के वाँ, जीते जी कोई पहुंचा[२] ।।
अजब इबरत आमोज़ है जलवा तेरा[३] ।
जिया–चश्में दिल से तुझे जिसने देखा[४] ।।

मु–इमा खुला[५] ज़िन्दगी का तुझी से ।
हुआ उकदा[६] वा ज़िन्दगी का तुझी से ।।

बका बुद्ध को दी किसी की फ़ना ने[७] ।
हमेशा यहाँ होते आये बहाने ।।
निहाँ राज़ था सैर में कौन जाने[८] ।
जिलाया किसी को किसी की कज़ा ने[९] ।।

ग़लत है कि दुनिया है मरने की बस्ती ।
यह जीने की है काम करने की बस्ती ।।

न ठहराओ हो जिस में वोह क्या सफ़र है ।
कड़ी है वोह मन्ज़िल कठिन रहगुज़र[१०] है ।।
मुसाफ़िर पसीने से याँ तर बतर है ।
वहां पियाऊ बिन करबला का हशर है[११] ।।

मुसाफ़िर का करती है दम ताज़ा मन्ज़िल ।
अजल[१२] से हैं फिर होते जीने के काबिल ।।

न थी मूल ने आज तक मौत देखी ।
ख़बर क्या, उसे हद है इस ज़िन्दगी की ।।

कोई दिन के हैं याँ सभी संगी साथी ।
न है बाप रहना, न याँ माँ है रहती ॥

समाँ सब पै है एक दिन आने वाला ।
यह है बाग़ का बाग़ मुरझाने वाला[१२] ॥

❊ ❊ ❊

१८९६ विक्रमी

बरस कोई दो मूल को और गुज़रे ।
हुए उमर के साल जब सोलह पूरे ॥
गये नाच में साथ इक दिन पिता के ।
मुहैया थे वाँ ऐश के साज़ सारे ॥
तमाशाई बैठे थे मसरुफ़े इशरत[१३] ।
कसैली न थी बज़्म की कोई लज़्ज़त[१४] ॥
नज़र आई शकल एक पैग़ाम्बर[१५] की ।
वोह कासिद न था, था कोई आला बरकी[१६]॥
कोई कान में उनके बात ऐसी फूंकी ।
गये सीधे घर रह गई बज़्म फीकी ॥

उठा मूल भी बाप के साथ भागा ।
कि माँ जाई ने उसकी हैज़ा किया था ॥

सिरहाने खड़ा नन्हीं के डाक्टर है ।
कमर बस्ता ख़िदमत में सब घर का घर[१७] है॥
कोई दाबता पाँव और कोई सर है ।
मगर आह ! होनी की किस को ख़बर है ॥

जो बुलबल ने देखी न गुलचीं ने सूंघी[१८] ।
तने से कली बिन खिले आह ! टूटी ॥

चचा चीखते वाँ बहिन माँ थी रोती ।
वोह घर क्या था मातम की थी एक बस्ती॥

इधर बाप को ग़श पै ग़श आ रही थी ।
उधर कूटती छाती थी जनने वाली ॥

मगर मूल शंकर के साकत खड़ा था[१९] ।
न एक आँख से उसकी आँसू था टपका ॥

कहा माँ ने पत्थर का दिल मूल का है ।
कहा बाप ने दिल कहां लूथड़ा है ॥
न छाती में दिल है, न दिल में दया है ।
नहीं भीगने का यह चिकना घड़ा है ॥

किसी को ख़बर क्या कि दिल चूर है याँ ।
छलकते नहीं क्योंकि भरपूर हैं याँ ॥

❊ ❊ ❊

संवत् १८९९

गुज़रती है जब उमर सब दम ज़दन में[२०] ।
बरस तीन क्या थे हुईं तीन पलकें ॥
गये दिन गुज़र करते नन्ही की बातें ।
कटी याद में जागते उस की रातें॥

न था मूल भूला बहिन की जुदाई ।
घराने में फिर द़फातन[२१] मौत आई ॥

चचा जान से, मूल था जिसको प्यारा ।
यकायक वोह मुल्के अदम[२२] को सिधारा ॥
न अब रह सका मूल फ़रकत[२३] का मारा ।
निकाला वोह अगला बुखार अब के सारा ॥

वोह रोया कि आख़र गईं सूज आँखें ।
वोह चीख़ा कि घिघी गई बंध गले में ॥

कोई दिन ख़्याल आया है मौत दुश्मन ।
सदा इसकी रहती है जीतों से अनबन ॥

जहां में अजल ज़िन्दगी की है सौकन ।
सुहाग उसका सहले नहीं यह वोह डायन ॥

सभी इसके चंगुल में हैं जब कि हैवां[२४] ।
तो क्यों कर बचे इससे बे बस है इनसां ॥

मगर फिर यह रह रह के उठती तरंगें ।
वोह बुज़दिल हैं जो डर के मैदां से भागें ॥
जो दुशमन कवी[२५] है तो क्या पीठ कर दें ?
है मर्दी[२६] तो यह अपना दल बल बढ़ायें ॥

करेंगे हम अब योग की मशक बन में[२७] ।
फछाड़ेंगे फिर मौत को दमज़दन में[२८] ॥

किसी तरह यह बात बाबा को पहुंची ।
नहीं मुशक की बू छुपाय से छुपती ॥
कहा मूलशंकर गया बन जो जोगी ।
भभूत इसकी मुंह मेरा काला करेगी ॥

मगर अब यह रुकता नहीं रोकने से ।
करो ऐश के इस पै मज़बूत डोरे ॥

है भंवरे का पिंजरा कंवल की हलावत ।
कफ़स और बुलबुल पै क्या? गुल की सूरत[२९] ॥
जवानी की जंजीर है तौके उल्फ़त[३०] ।
हसीं बीवी से इसको दे दीजे रग़बत[३१] ॥

मुहैय्या लगे करने सामाने शादी[३२] ।
इजाज़त न दी ता पढ़े जाके काशी ॥

वहीं पास गांव में पण्डित था रहता ।
हुआ मूल लाचार शागिर्द उसका ॥
इधर वोह लगन शुभ करीब आन पहुंचा ।
मुकट जिस में था मूल की सिर पै धरना ॥

वोह दुल्हा को सहरा बंधा चाहता है ।
वोह डोरे में पंछी फंसा चाहता है ॥

इधर अम्बा शंकर था फूला खुशी में ।
अनोखी उधर चहल थी मोरवी में[३३] ॥
थीं क्या नोबतें[३४] बज रही हर गली में ।
नज़र डालना मूल के कोई जी में ॥

बराती थे करते जिलो की तैयारी[३५] ।
हुआ नीम शब मूल शंकर फ़रारी[३६] ॥

कि देखें है कटती भी दुनिया की उलझन ।
करे पैरवी[३७] कब तलक घर का आंगन ॥
हमें तंग है हमदमो ! सेहने गुलशन[३८] ।
चलो माप देखें ज़रा बन का दामन[३९] ॥

नमस्ते ! मेरे घर की गलियो ! नमस्ते ।
मिरी मोरवी के झरोको ! नमस्ते[४०] ॥

कदम मूल शंकर का जब घर से निकला ।
ज़मीं ने वहीं फ़र्शे नर्गसे बिछाया[४१] ॥
हुआ चश्मे अंजम को दर्शन का चस्का[४२] ।
फफोला मिटा दीदाय मेहरो माह का[४३] ॥

ज़माने की आंखों में घर करने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. ऐ मौत ! तू अमृत-पथ (मुक्ति) का दीपक है, २. किसी की मुक्ति मरने पर होती है, कोई जीवन मुक्त हो जाते हैं, ३. मृत्यु अत्यन्त शिक्षाप्रद है, ४. सच्चे अर्थों में उसी का जीना जीना है जो मृत्यु के रहस्य को जान लेता है, ५. पहेली समझता है, ६. गांठ मौत से ही खुलती है, ७. बुद्ध को भी मृत्यु का दृश्य देखकर जीवन मिला, ८. कौन जानता था कि बुद्ध को भ्रमण के लिए निकलने पर शव को देखकर छुपे रहस्य का ज्ञान होगा, ९. किसी की मृत्यु ने किसी को

जीवन दे दिया, १०. मार्ग, ११. कर्बला की युद्धस्थली जहां जल बिन प्रलय का दृश्य था । हसन और हुसैन प्यासे ही मर गये, १२. मौत तो एक न एक दिन आयेगी, संसार में मौत का स्वाद सब प्राणियों को चखना पड़ता है, १३. मौज मस्ती में मस्त, १४. कुछ भी कटु न था । सब कुछ स्वादू था, १५. सन्देशवाहक, १६. सन्देश लाने वाला मानो तार लेकर आया, १७. सब सेवा में कटिबद्ध थे, १८. मौत के आगमन का पता न बुलबुल को चलता है और न फूल तोड़ने वाले को, १९. चुपचाप प्रतिमा के समान स्तब्ध, २०. आंख झपकते जब आयु बीत जाती है, २१. अकस्मात्, २२. झटपट परलोकगमन कर गया, २३. विरह, २४. जब पशु तक इसके पंजे में हैं, २५. बलवान, २६. वीरता, पौरुष, २७. योगाभ्यास, २८. शीघ्र मौत कर पराजित करेंगे, २९. भंवरा कंवल-पुष्प पर मोहित होता है जैसे बुलबुल फूल पर-दोनों इसी कारण पिंजरे में बन्दी बन जाते हैं। भंवरा कंवलरूपी पिंजरे में बन्द होता है, ३०. यौवन में स्त्री का प्रेम एक बन्धन सिद्ध होता है, ३१. सुन्दर पत्नी में इसे प्रवृत्ति हो जायेगी, ३२. विवाह के सामान जुटाने लगे, ३३. मोरवी में बहुत सजधज और भीड़भाड़ हो गई । ३४. विवाह के कारण बाजे गाजे बज रहे थे । हर्षोल्लास था, ३५. बराती साथ जाने की तैयारी में लगे थे, ३६. आधी रात को मूल घर से चुपचाप भाग गया, ३७. अनुकरण, ३८. लो मित्रो ! हम चलते हैं यह घर रूप, नगर रूप उद्यान और इसका आंगन अब हमारे लिये तंग तंग है, ३९. अब बन की राह लेते हैं, ४०. तब टंकारा ऋषि की जन्मस्थली है, यह निर्णय नहीं हुआ था अत: मूलशंकर मोरवी को नमस्ते कहकर विदा होते हैं, ४१. भूमि ने आंखों का फ़र्श बिछाया, ४२. मूलशंकर के दर्शनों की तारों की आंखों को चाह हुई, ४३. सूर्य और चन्द्र दोनों के धब्बे दूर हो गये । मूल के दर्शन से उनकी आंखें चमक उठीं ।

संवत् १९०५ वि० चानौद नर्मदा तट

४. संन्यास

निकलने को घर से निकल मूल आया ।
कहां जाय लेकिन ठिकाना न सूझा ।।
कभी दो क़दम पहले घर से न निकला ।
फिर इस पर था लड़का बड़े आदमी का ।।
दिया छोड़ शहाराह को इस ख़तर से[1] ।
मबादा[2] मिलें जान पहचान वाले ।।
महन्तों ने लूटा उसे झांसा देकर ।
पहनते हैं त्यागी भी सोने के ज़ेवर ।।
पटक रेशमी धोतियां दीं ज़मीं पर ।
बिरागी के कहने से ली ओढ़ चादर ।।
किसी ब्रह्मचारी ने चेला बनाया ।
लकब[3] मूल ने शुद्ध चैतन्य पाया ।।
गये सिद्धपुर में कि मेले के दिन थे ।
सुना है वहां अच्छे जोगी बिराजे ।।
इसी धुन में थे छोड़ कर घर को निकले ।
चरण ख़ूब वां ध्यानी मण्डल के धोय ।।
ख़बर बाप को लग गई मूल वाँ है ।
हर इक सन्त साधु के पीछे दवां है[4] ।।
यकायक वोह आ पहुंचे बिजली की सूरत ।
मिली ढूंढते ढूंढते मोहिनी मूरत ।।
न रोका गया दिल से जोशे तबीयत ।
हवेदा हुई आग बन बनके उलफ़त[5] ।।
कहा ग़म में वां घुल के मरती है मैय्या ।

हैं यां ब्रह्मचारी बने फिरते भैय्या ॥
डरा मूल और बाप के साथ आया ।
लगाया कड़ा बाप ने उस पै पहरा ॥
मगर ख़ूब चौकस यह धुन का धनी था ।
बची पासबां[५] की नज़र और भागा ॥
दरख़त एक बड़ का था मन्दिर के ऊपर ।
रहे दम बखुद[६] उसकी शाख़ों में दिन भर ॥
कलस से सरे शाम मन्दिर के उतरे ।
गए लौट जब पासबां वां से सारे ॥
बहुत देर के गरचे थे भूखे प्यासे ।
न ठहरे मगर पकड़े जाने के डर से ॥
लबे नर्बदा[७] फिर हुआ उनका डेरा ।
सुना एक जमघट है वां साधुओं का ॥
जहां बैठा पाया कोई पूरा ध्यानी ।
वहीं ले लिया उसके चरणों का पानी ॥
जो झिड़का किसी ने न तहकीर[८] मानी ।
कि बनते हैं ज्ञानी की सेवा से ज्ञानी ॥
थे वेदान्त के राज़ जो जो निराले ।
लिये पढ़ वोह सत्संग में साधुओं के ॥
अभी मूल की थी उमडती जवानी ।
न ध्यानी था पक्का न पूरा था ज्ञानी ॥
ख़यालात की थी अनोखी दवानी[९क] ।
लो ! भोले ने संन्यास लेने की ठानी ॥
कहा है जो रोटी पकाने का झगड़ा ।
यह संन्यास लेने से आख़िर मिटेगा ॥
है संन्यास क्या ? दुःख में औरों के गलना[९ख]।
कदम तेग़ की धार पर धर के चलना ॥
न हरगिज़ मचलना—न हरगिज़ फिसलना ।

पराई चिता पर पड़े आप जलना ॥
इधर तोड़ना बन्द सब ख़ानमां[१०] के ।
उधर बाप बन जाना सारे जहाँ के ॥
जो संन्यासी इक बार उन्हें देख लेता,
उमडती जवानी को शाबाश कहता ।
न संन्यास देने का पर नाम लेता,
यही कहता इनसे अभी खेलो बेटा !
मगर रोकता कौन धुन के धनी को,
किया आख़िर आमादा[११] इक दक्षिणी को ।
बरत तीन दिन शुद्धचैतन ने रखा,
दया छाई चेहरे पै आनन्द बरसा ।
गुरु ने दयानन्द नाम उनको बख़्शा,
हुए नग़मः ज़न[१२] सुनके सब दश्तो दर्या[१३] ।
किया जिसने संन्यास का रुतबा[१४] आला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ॥

---

१. बड़ा मार्ग इस भय से छोड़ा, २. ऐसा न हो, ३. नया नाम, उपाधि , ४. दौड़-दौड़ कर जाते, ५. स्नेह आग बन बन कर प्रकट हुआ, ६. सैनिक, रक्षक, ७. नर्मदा का तट, ८. अपमान, ९क. विचारों का अनूठा प्रवाह था, ९ख. 'मज़हब का मक्सद' पुस्तक में पण्डित जी ने यह पंक्ति ऐसे दी है-'है संन्यास क्या ? ग़म में औरों के घुलना' ।, १०. सब गृहस्थों के, ११. तैयार कर लिया, १२. गीत गाने लगे, १३. नदियां व जंगल, १४. पद प्रतिष्ठा बढ़ा दी ।

संवत् १९०५ से विक्रमी संवत् १९१७ तक

५. जोगी की मौज

दयानन्द शहज़ादा अब अमन का था,
वोह मालिक था मुख़्तारे हर दो सरा[१] था ।
ये राज उसके आगे भला माल क्या था,
शहंशाह उसकी नज़र में गदा[२] था ।
ज़मीं आसमां उसके चरनों में ख़म थे ।
थे ख़िदमत में हाज़िर दरिन्दे परिन्दे ॥
पहाड़ों में उसका कभी दौर दौरा,
कभी उसका था कोहो मैदा[३] में डेरा ।
कभी सर पे सेहरा[४] के जा गाड़ा झण्डा,
लबे जू[५] कभी नाच किरनों का देखा ।
कभी सबज़ाए मख़मली[६] पर हैं सोये ।
सिरहाना कभी ईंट का सर के नीचे ॥
हैं छिड़काव कर जाते गरमां में बादल,
बिछा जाती काई है पत्थर पै मख़मल ।
कुहर[७] का कभी ओढ़े बैठे हैं आंचल,
तू कर रक्स[८] पानी पै किरनों की झिलमिल !
हैं नदियां नया राग अनहद[९] का गातीं ।
बिरह की हैं आग उनके मन में लगाती ॥
तरंग आई जी में कभी खुसरवाना[१०],
हुए नरबदा के किनारे रवाना ।
नुकीली चट्टानों को पापोश[११] माना,
पड़ा रेंगकर नीचे कांटों के जाना ।

बहार आई थी लाल। ओ गुल[१२] पै हरसू ।
गये खिल दयानन्द के तन पै केसू[१३] ।।
समझ क्या सके कोई जोगी की मौजें,
सफ़र रख दिया बरफ़ का सरदियों में ।
हुई सुन्न बरफ़ानी नालों में टांगें,
न थी ये सक्त[१४] दो कदम आगे सरकें ।
था ठिठुरे हुए जिस्म पर पड़ता पाला ।
कुहर[१५] ने लिहाफ़ आन रुई का डाला ।।
कहीं भूख में यख़[१६] का तोदा चबाया,
कहीं पाव भर दूध मुंह से लगाया ।
कहीं वन के पत्तों को भोजन बनाया,
जो खाना मिला भूख के वक्त खाया ।
न जोगी को लागू हुई तंगदस्ती ।
रहे लूटते लज़्ज़ते फ़ाकामस्ती[१७] ।।
हिमाला पै चढ़ने को इक रोज़ निकले ।
ऋषि कोई पहुंचा हुआ ढूंढते थे ।।
गये ठहर सर्दी में साथी ठिठर के ।
यह तन्हा चढ़े ज़द से इनसां की ऊंचे ।।
नज़ारा वहां हर तरफ़ था रुपहरी ।
किरण उसमें थी कोई कोई सुनहरी ।।
यही जी में आया कि दम तोड़ दो याँ ।
कहां और राहे बका की हैं यह शां ?
कहां ऐसी चाँदी की सोने की नदियां ।
यह रुहानी पाकीज़गी के हैं सामां ।।
यह छब बर्फ़ के गुम्बदों की निराली ।
यह नदियां अमर लोक को जाने वाली ।।
बस अब कूदने को थे तैयार स्वामी ।
कहा झुक के पर्वत ने हुश्यार स्वामी ।।

न यूँ ज़िन्दगी से हो बेज़ार स्वामी !
बढ़ा अपना तू हम से मीनार स्वामी ।।
हुआ पस्त चरणों में तेरे हिमाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. इहलोक और परलोक, २. फ़कीर, ३. पर्वत और मैदान, ४. रेतीली भूमि, ५. स्रोत या नदी का किनारा, ६. हरी-हरी घास, ७. ओस, ८. नृत्य, ९. अन्तर्ध्वनि, १०. आह्लाद राजाओं सरीखा, ११. जूता, पादुका, १२. फूल, १३. ढाक के फूल, १४. सामर्थ्य, शक्ति, १५. ओस, १६. बरफ़, १७. उपवास का आनन्द ।

संवत् १९१२ विक्रमी गढ़ मुक्तेश्वर[१] के निकट गंगा तट पर

६. सच्च झूठ की परख

लबे गंगा[२] इक दिन थे पढ़ते किताबें ।
न आया कोई उनका मज़मूं समझ में ।।
कसौटी पै उसको कहा रख के देखें ।
कोई बात भी है कि हांकी हैं गप्पें ।।

ब्याँ[३] उसमें था आदमी की नसों का ।
न था बात से बात का जोड़ मिलता ।।

जो देखे हैं लाश एक दरया में बहती ।
कहा मिल गई झूठ सच्च की कसौटी ।।
किताबें वहीं रख के कस ली लंगोटी ।
गये तैर कर लाश बाहर निकाली ।।

किनारे पै दरया के ला उसको रखा ।
छुरी लेके फिर उज़्व उज़्व[४] उसका देखा ।।

लिया दिल निकाल उसका छाती से बाहर ।
चभोई छुरी उसकी नस नस के अन्दर ।।
किया तजरबा ग़ौर से फिर जिगर पर ।
दिमाग़ उसका देखा उलटकर पलट कर ।।

न उस में किताबों की इक बात पाई ।
कहा डूबी अच्छी यह गप्पों की गठरी ।।

इधर लाश को फिर नदी में बहाया ।
उधर उन कुतब[5] का किया पुर्ज़ा पुर्ज़ा ॥
हुई जब कुतब नज़रे तुग़याने गंगा[6] ।
वहीं शोर पहनाय[7] दरया से उठा ॥

किताबों का सच्च झूट जिसने कंघाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. मूल में मुक्तसर छपा है । मुक्तसर तो अबोहर के निकट पंजाब में है । यहां गंगा कहां ? यह भूल कातिब के अज्ञान के कारण हुई । और भी ऐसी कुछ अशुद्धियां हैं । श्री पं० चमूपति जी प्रेस कापी पढ़ लेते तो अशुद्धियां न रहतीं । 'जिज्ञासु'

२. गंगा तट, ३. वर्णन, ४. अंग-अंग, ५. पुस्तकों, ६. गंगा की लहरों की भेंट, बहाओ में पुस्तकें बहा दीं, ७. नदी के पाट से ।

संवत् १९२७ विक्रमी मथुरा

७. गुरु का बचन

तलाश अब गुरु की दयानन्द को थी ।
भरो ज्ञान से कोई भिक्षु की झोली ।।
बहुत राह देखी बड़ी ख़ाक छानी[१] ।
गवारा मुशक्कत, जो पेश आई सब की[२] ।।

फिरे सिर के बल नर्बदा के किनारे ।
हिमालय गये पाओं आँखों को करके ।।

सुना एक मथुरा में रहते हैं दण्डी ।
श्री विरजानन्द उनको है ख़ल्क[३] कहती ।।
हैं वैयाकरण पक्के और वेदपाठी ।
है कुटिया में तदरीस[४] की गंग जारी।।

लगी उनको वोह लौ है परमात्मा से ।
कि हैं बन्द आँखें किये मासिवा से[५] ।।

गये उनका दरवाज़ा जा खटखटाया ।
यह कौन आया ? कुटिया से दण्डी ने पूछा ।
कहा हूँ दयानन्द चरणों का भूका ।
बहुत ढूँडता हूँ नहीं ज्ञानी मिलता।।

दरीचा खुला[६] पाय दण्डी के दर्शन ।
दयानन्द की हो गईं आँखें रोशन ।।

गुरु ने यह पूछा—कही जब नमस्ते ।
कहो आज तक क्या रहे पाठ पढ़ते ।।

दयानन्द ने नाम लेकर कुतब के ।
कहा इन का मज़मूँ है सीने में मेरे[७]।।

गुरु मुस्करा कर[८] लगे कहने बेटा ।
नहीं काम का एक भी इन में पोथा ।।

गिना तुम ने पण्डित जो सारस्वत इन में ।
सुनो तुम को करतूत उसकी सुनायें ।।
कभी हाँकता पण्डितों में था गप्पें ।
ग़लत बोल कर ख़ूब चलता था चालें ।।

हुआ जब न इक लफ़्ज़[९] का रूप सीधा ।
ग़लत व्याकरण का बनाया यह पोथा ।।

नमूना यह है ज़िद्द का पण्डितों की ।
किताबें जो लिखते रहे उलटी सीधी ।।
न पूछ उनमें क्या क्या भरी है बुराई ।
यह झूठों का थैला है गप्पों की गठरी ।।

जो हो जानना तुम को राज़े हकीकत[१०] ।
करो नज़रे जमना यह तूफ़ाने बिद-अत[११] ।।

कड़ा हुकम सुनकर यह दण्डी गुरु का ।
गया सूए जमना दयानन्द सीधा ।।
कहा—हैं किताबें ही इक अपना तरका[१२] ।
यह कहते हैं इनको करो ग़र्क़ दरया ।।

सहीं आज तक खोज में इनकी कड़ियाँ[१३] ।
गुज़ारीं मुसीबत की साथ इनके घड़ियाँ[१४] ।।

कभी इनको ग़ुर्बत[१५] का साथी बनाया ।
कभी दिल का ख़िल्वत[१६] में दुखड़ा सुनाया ।।
कभी रो के सीने से अपने लगाया ।
जो नींद आई इनको सिरहाने सुलाया ।।

यही आज तक थीं मिरी संगी साथी ।
करुँ आज क्यों कर मैं पत्थर की छाती ।।

उधर था गरु का यह अर्शाद[१७] पहला ।
जो मानें तो विपदा, न मानें तो विपदा ।।
जो बर्सों की मेहनत थी, की नज़रे दरया ।
उठे बुलबले नाचते बांधे घेरा ।।

गुरु का बचन जिसने जी जाँ से पाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. बहुत घूमे फिर, कष्ट झेले, २. जो कुछ भी करना पड़ा, दुःख आय, सब सहे, ३. लोग, प्रजा, ४. पठन पाठन, ५. ईश्वर के अतिरिक्त जो कुछ भी है, ६. खिड़की–यहाँ इसका अर्थ द्वार ही लेना चाहिए, ७. इनके सब विषय मुझे कण्ठस्थ हैं, ८. मूल में 'कर' शब्द छूटा है, ९. शब्द, १०. सत्य का मर्म, ११. अनार्ष, वेद विरुद्ध सब पोथे एक कलङ्क–बुराई ही तो है । ऐसे पोथे स्वार्थवश रचे गये, १२. यमुना की ओर जाकर पुस्तकों की सम्पदा बहा दी, १३. इनके लिए कितना कड़ा श्रम किया, १४. बनों पर्वतों में भी इन्हें छाती के साथ लगाये रखा, १५. यात्राओं में, परदेस में, १६. एकान्त, १७. आदेश ।

***

संवत् १९१७–१९१९ विक्रमी मथुरा

८. ऋषि–ऋण

गुरु की सदा टहल करते हैं चेले ।
गुरु का बचन सिर पै धरते हैं चेले ॥
गुरु जो कहे कर गुज़रते हैं चेले ।
गुरु की कज़ा[१] आय मरते हैं चेले ॥

सब इज़ाज़े दुनिया, सब इज़ाज़े अकबा[२] ।
गुरु के चरण का सरासर हैं सदका[३] ॥

गुरुदेव जमुना के जल से नहाते ।
दयानन्द गागर लिये दौड़े जाते ॥
मनों पानी मंझधार का रोज़ लाते ।
न कुढ़ते न थकते न थे हिचकिचाते ॥

गुरु ने कभी तैश[४] में लात मारी ।
तो जा दाबने बैठे खुद टांग उनकी ॥

कई दिन था भूने चनों पर गुज़ारा ।
मिला कुछ तो रोज़ी नहीं तो है रोज़ा[५] ॥
दया से पिघल कर सति[६] एक जागा ।
लगा इनका करने सदा घर पै न्योता ॥

कोई देता शब भर की बत्ती का रोग़न[७] ।
कोई दूध का भर के दे जाता बासन[८] ॥

सबक में थीं लगतीं दलायल की झड़ियाँ ।
इधर तेज़ हुज्जत उधर साफ़ बुरहाँ[९] ॥

थे उस्ताद शागिर्द मसरुफ़े जोलाँ[१०] ।
तमाशाई कुटिया के सारे सबक ख़ाँ ।।

अढ़ाई बर्स तक यह महमेज़ियाँ थीं[११] ।
चमकती ज़का की शरर रेज़ियाँ थीं[१२] ।।

हुई जब मतालिब की तहसील पूरी[१३] ।
गुरु से लगा माँगने चेला छुट्टी ।।
कहा लाके चरणों में लौंगों की झोली ।
गुरुदेव ! है नज़र नाचीज़[१४] मेरी।।

चरण चश्मे तर[१५] से ऋषि के भिगो कर ।
कहा जान कुर्बान इस पाक दर पर[१६] ।।

उठा कर गुरु ने गले से लगाया ।
कहा मेरी आँखों ने नूर आज पाया ।।
हुआ बारवर[१७] आज तक का पढ़ाया ।
दयानन्द स्वामी को चेला बनाया ।।

कबूलूँ मगर नज़र लौंगों की क्योंकर ।
कहीं हीरे देकर भी लेते हैं पत्थर ?

बड़ी बात क्या है जो जाँ नज़र कर दो ।
जो हैं जिस्म में हड्डियाँ नज़र कर दो ।।
जिगर कर दो और दिल भी हाँ ! नज़र कर दो ।
जो रखते हो ज़ोरे ज़बाँ नज़र कर दो ।।

पढ़ाया था क्या तुम को लौंगों की ख़ातिर ?
नहीं ! चेला बोला–यह लो ! सिर है हाज़िर !

यह सुनकर जवाब उनका दण्डी थे ख़ंदाँ[१८] ।
महब्बत ने दीं बांध अशकों की झड़ियाँ ।।
मगर फिर हुए आहें भर भर के नालाँ[१९] ।
कि हे ! हे ! मेरा हिन्द है दुःख में गलताँ[२०] ।।

यहाँ पेट भर मिलती रोटी नहीं है ।
कोई झूट सच्च की कसौटी नहीं है ॥

यहाँ बेखुदा फिर रही है खुदाई ।
न है बाप अपना, न अपनी है माई ॥
धरम की दुहाई ! धरम की दुहाई !
है धुन कुफ़्र की सब दिलों में समाई[२१]॥

कहीं फूट ने इनके पुर्ज़े किये हैं ।
कहीं छूत ने हिस्से बख़रे किये हैं ॥

वहाँ दिन दहाड़े धरम लुट रहा है ।
यहाँ मस्त मौजों में भटका खुदा है[२२]॥
वहां नित नई सिरे पै आफ़त बपा है[२३] ।
यहां काम करना कसम हो गया है[२४] ॥

जहां में नहीं वेद का नाम बाकी ।
ब्रह्मण को है चैन से नींद आती ॥

मेरी जाँ ! तू जा इन मरों को जगा दे ।
इन्हें जीते ठाकुर का दर्शन करा दे ॥
मिटा भेद वेदों की घुट्टी पिला दे[२५] ।
गंवा जान अपनी, जहां को जिला दे ॥

यही चाहता नज़र है तुझ से स्वामी ।
मिटा मेरे भारत का दाग़े ग़ुलामी[२६] ॥

गुरु की हुई जब यह तकरीर पूरी ।
दयानन्द ने उठ के गर्दन झुका दी ॥
कहा–है गुरु का बचन पाक शुरती[२७] ।
कुटी हिल गई इससे शाबाश निकली॥

ऋषि-ऋण का जिसने फ़ना[२८] मूल डाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

१. मौत, २. लोक परलोक के सब मान सम्मान, ३. गुरु कृपा के कारण, गुरु चरणों पर वारी, ४. आवेश में आकर, ५. कुछ मिला तो खा लिया अन्यथा उपवास, ६. दानी दयालु अमरलाल जोशी, ७. रात्रि–दीपक का तेल देता, ८. पात्र, ९. गुरु शिष्य के तर्क चलते रहते, १०. घुड़दौड़–ज्ञान चर्चा, ११. घौड दौड़, १२. मानसिक विकास की चिनगारियाँ, १३. लक्ष्य पूरा हो गया, १४. तुच्छ भेंट, १५. सजल नयनों से, १६. पवित्र द्वार पर, १७. फलीभूत, १८. मुस्कराय, १९. रोय, २०. दुःख में डूबा, २१. हृदयों में अधर्म घुस चुका है, २२. नवीन वेदान्ती लोग ब्रह्म बने बैठे हैं। वे यह मानते हैं कि भ्रम में पड़कर जीव स्वयं को ब्रह्म न मानकर जीवात्मा समझे बैठा है, २३. नित्य नई विपदा आती है, २४. अद्वैतवादी ज्ञान से मुक्ति मानते हैं। कर्म न करना–निकम्मापन उनका आदर्श है, २५. भेदभाव मिटा कर सबको वेद का ज्ञान दो, २६. यह काव्य मार्शल ला [सन् १९१९ ई०] से पहले का है। कवि खुलकर देशवासियों को स्वराज्य–प्राप्ति के लिए प्रेरित कर रहा है, २७. उर्दू कविता के श्रुति का शुरती होना कोई बड़ी बात नहीं है। धर्म का धरम कई बार हुआ मिलेगा, २८. बलिदान–मिट जाना, सर्वस्व अर्पण।

विक्रम संवत् १९२४ हरिद्वार

९. वेद की झण्डी

हरिद्वार में यूं तो है रोज़ मेला ।
लगा जातरा का है हर वक्त तांता ॥
मगर कुम्भ का कुछ अनोखा है नकशा[१] ।
नहीं जिसका सानी[२] ज़माने ने देखा ॥

मुकदस[३] है गंगा की हर इक बसाखी[४] ।
यह बारह बरस में है इक बार आती ॥

झिझकते नहीं लखपति जातरा पर ।
हैं लाखों उड़ाते सति जातरा पर ॥
पहुंचते हैं क्या क्या जति जातरा पर ।
उलट पड़ते हैं बिद-अती[५] जातरा पर ॥

सभी पंथ पंथाई अस्थानों वाले ।
बनाते हैं लाखों देवालय शिवालय ॥

अखाड़े हैं संन्यासी हर सू लगाते[६] ।
उदासी अलख की हैं धूनी जमाते ॥
हैं जोगी जुगत के करिशमे दिखाते[७] ।
बिरागी हैं बैराग का राग गाते ॥

अल्फ़ नंग नांगे[८] यहां फिर रहे हैं ।
गुनाह धोने आये यहां निर्मले हैं ॥

कहीं इन में पहले नहाने पै झगड़ा[९] ।
कहीं डेरा डंडा जमाने पै झगड़ा ॥
कहीं हर की पौहड़ी पै जाने पै झगड़ा ।
कहीं भेंट पूजा चुकाने पै झगड़ा ॥

यह हैं पाक दुनिया की आलायशों से[१०] !
नहीं काम इन्हें भोग की लज़्ज़तों से[११] !!

यहां गर्म बाज़ार है राहज़न[१२] का ।
बड़ा दाओ है चल रहा ब्रह्मण का ।।
कहीं पैसा लेता है झूटे बचन का ।
कहीं मूल लड्डू है मीठे सुख़न का[१३]।।

कहीं सर पै पण्डा कहीं है पुजारी ।
लुटी रोज़े रोशन में मख़लूक सारी[१४] ।।

जिन्हें हर की पौड़ी है मुक्ति का ज़ीना[१५] ।
उन्हें एक है आज का मरना जीना ।।
जो लौटे तो परलोक का है ख़ज़ीना[१६] ।
मरे तो है गंगा में अपना दफ़ीना[१७]।।

उन्हें भीड़ में रौंदे जाने का डर क्या ।
सुधर जायेगा लोक परलोक उनका ।।

जो हैं हर की पौड़ी पै डुबकी लगाते ।
ऋषिकेश अकसर[१८] हैं उनमें से जाते ।।
यहां पाप गंगा के हैं सर चढ़ाते ।
हैं लहराती झण्डी को वाँ सर[१९] झुकाते।।

तले जिसके है एक डण्डी का आसन ।
लिखा है फरेरे[२०] पै पाखण्ड खण्डन ।।

वोह कहता है सच्च हाड की पौहड़ियों से ।
नहीं मिलती मुक्ति तुझे हड्डियों से ।।
है गंगा भरी गन्दगी के नलों से ।
हरिद्वार के पाप की नालियों से ।।

बदन साफ़ पानी से है साफ़ होता ।
दिल अश्के निहानी से है साफ़ होता[२१] ।।

तू रो देखकर अपने आमाले बद[२२] को ।
बहा गंग तोबा की, धोले खिरद को[२३] ।।

बुराई तिरी पहुंची ज़िल्लत की हद को[२४] ।
ज़रा देख तू अपनी दादो स्तद को[२५] ॥
मुहासिब[२६] लगे मांगने तुझ से लेखा ।
तू गंगा में फ़रद[२७] अपना है धोता फिरता ॥
कि दमहे[२८] थे सेवा में डण्डी की आते ।
समझदार सतसंग का लुत्फ़ उठाते ॥
वोह कम थे जो गुर धर्म का सीख जाते ।
खड़े बेख़िरद[२९] यूं ही दाढ़ी हिलाते ॥
जो देखा नहीं पाप की रुकती गंगा ।
जतिराज लाचार[३०] चुप साध बैठा ॥
यकायक जो दण्डी हुआ मौनधारी ।
तो लहरा के झण्डी पुकारी मैं वारी ॥
तू उपदेश की अपने कर गंग जारी ।
अभी तेरे पीछे लगी ख़ल्क[३१] सारी ॥
तुझे कहते हैं वेद की झण्डी वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. वात, रंग रुप, २. सदृश-उदाहरण, ३. पवित्र, ४. वैशाख मास का एक पर्व, ५. कुरीतियां, कुकर्म करने वाले, ६. चहुं दिश, ७. चमत्कार, ८. सर्वथा नंगे साधु, ९. कुम्भ के पिछले स्नान पर बीसियों इसी झगड़े में लहूलुहान हो गये, १०. सांसारिक बुराइयों से रहित-पवित्र, ११. भोगों के स्वाद, १२. लूटने वाले, १३. मीठे वचनों का मूल्य, १४. सब दिन के प्रकाश में लूटे जा रहे हैं, १५. सोपान, १६. कोश-सम्पदा, १७. दबा हुआ धन माल, १८. प्राय:, १९. वहां, २०. झण्डा, २१. हृदय भीतर की अश्रुधारा से, पश्चाताप से शुद्ध होता है, २२. दुष्कर्म, २३. पश्चाताप की गंगा से बुद्धि को शुद्ध कर, २४. पतन की पराकाष्ठा तक, २५. अपने जीवन का लेखा जोखा देख, २६. लेखा करने वाले, २७. बही खाता-लेन देन, २८. छोटे-बड़े, २९. मूर्ख, ३०. विवश, ३१. संसार ।

* * *

माघ संवत् १९२४ कर्णवास

१०. बे तलवार का बुत शिकन[१]

लिया कुम्भ का देख स्वामी ने मेला ।
जो लौटे तो थे ग़म की सूर्त सरापा[२]।।
वोह मेला था क्या ? एक भारत था छोटा ।
था इसियाँ में इक मुल्क का मुल्क डूबा ।।

सियाह पोश गंगा थी मातम में इसके ।
हिमाला की आंखों में आंसू थे गिरते ।।

कहा रोग कहने से मिटता नहीं है ।
यह रोगी कभी का अजल के करीं[४] है ।
फ़ल्क इसकी हालत पै अन्दोहगीं[५] है ।
इसे देखकर ख़ाक बर सरज़मीं है[६] ।।

चलो कोई दिन इसके दुखड़ों पै रोयें ।
जो बिगड़े हैं ज़ख़्म उनको अशकों से धोयें ।।

यकायक जो सीने में बैराग जागा ।
वहीं छोड़ सब जिस्म का कपड़ा लत्ता ।।
कहा जोग है ऐसे जोगी का चारा ।
यह बूटी से होगा रियाज़त[८] की अच्छा।।

तड़प कर कभी सूये सेहरा[९] थे जाते ।
लबे गंगा अशकों[१०] के दरया बहाते ।।

हुई बेखुदी[११] इस कदर ग़म में तारी ।
कि तन मन की सब अपने सुध बुध बिसारी[१२] ।।

जहां ले गई दिन ढले बेकरारी ।
वहीं जागते काट दी रात सारी ॥

रहा जलती रेतों पै गर्मा[१२] में आसन ।
चबाय कड़ी भूक में कच्चे बेंगन ॥

थे अफ़कार में गरचे ग़ल्तान रहते[१३] ।
वतन के अल्म[१४] में परेशान रहते ॥
सदा करते भगवान् का ध्यान रहते ।
सदा तालबे रहमे रहमान रहते[१५]॥

मुशक्कत[१६] की इस वास्ते करते आदत ।
कि मुसलिह के हिस्से बिदी है मुशक्कत[१७] ॥

हुए मशक से जब रियाज़त में यक्ता[१८] ।
जलाल[१९] उनकी सूर्त से था क्या टपकता ॥
था कुन्दन सा नूरानी चेहरा चमकता ।
कोई आंख भरकर न था देख सकता॥

लगे खूब अशायत सदाकत की करने[२०] ।
महब्बत का दम दोस्त दुश्मन की भरने ॥

किसी के गले में था तौके जहालत[२१] ।
किसी के था माथे पै दाग़े ज़लालत[२२] ॥
बदन पर किसी के था नकशे बतालत ।
निशाने कुफ़्र पर थे करते दलालत[२५]॥

दयानन्द ने कण्ठियां दीं उतरवा ।
मिटाय तिलक कर दिये चक्र अनका[२६] ॥

पड़ी मन्दिरों में थी इक तरफ़ हलचल ।
था बेताब पण्डित पुजारी था बेकल ॥
करें क्या ज़बां शर्म से थी मुकफ़्फ़ल[२७] ।
दयानन्द के आगे भूले थे छल बल ॥

मुनाज़िर[२८] बड़े ठाठ से घर से आते ।
पहुंचे ही यां चौकड़ी भूल जाते ॥

कोई हीरावल्लभ थे मशहूर ज्ञानी ।
थी उनकी ज़बां में ग़ज़ब की रवानी[२९] ॥
वोह गंजे मआरिफ़ थे बहरे मु-आनी[३०] ।
थे अज़बर उन्हें सब अलूमे निहानी[३१] ॥

बुतों को दयानन्द के रखके आगे ।
कहा इनको लगवाऊंगा भोग तुम से ॥

कई दिन चली उनमें शमशीर बुरहा[३२] ।
रहा नकल और अकल का गर्म मैदां ॥
हकीकत हुई जूं दमे तेग़ रख़शा[३३] ।
न बाकी रही कालिबे वहम में जा[३४]॥

बहुत अर्सा यूं दे दिलाकर दलायल ।
हुआ हीरावल्लभ सदाकत का कायल[३५] ॥

सिंघासन से फ़ौरण बुतों को उठाया ।
अबस हफ़्ता भर उनको भूका बिठाया[३६]॥
उन्हें गंग में बारे आख़िर नहलाया[३७] ।
यह आवाज़ निकली जो धम से गिराया ॥

बुतों को सिंघासन से ढा देने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. महमूद गज़नवी स्वयं को मूर्ति भञ्जक कहता था । उसने तलवार से मूर्तियाँ व मन्दिर तोड़े । ऋषि ने बिना तलवार के हृदयों से मूर्ति-पूजा के अंधविश्वास को उखाड़ा । तलवार से बाहरी सफलता तो मिल जाती है । हृदय तो जड़ पूजा में आस्था रखते ही रहते हैं । २. पूर्ण रुप से, ३. पाप, ४. गंगा का जल नीला होता है कवि इसे शोकाकुल बताता है, ४. मौत के निकट, ५. चिन्तित, शोक में, सिर पर धूलि डाले, धरा पर धूलि तो होती ही है, ७. अश्रुओं,

८. तप, ९. बन की ओर, १०. गंगा तट पर अश्रु बहाते, १. इतनी सुधबुध बिसराई, १२. ग्रीष्म काल में, १३. यद्यपि इसी सोच में डूबे रहते, १४. दु:ख में, १५. सदा दयालु प्रभु की कृपा की कामना किया करते, १६. कठोर श्रम, तप, १७. सुधारकों के भाग्य में तप ही लिखा होता है, १८. अद्वितीय, निपुण, १९. अद्‌भुत तेज, २०. सत्य के प्रसार प्रचार में डट गये, २१. अज्ञानता की हंसली, कण्ठियों की ओर संकेत है, २२. मार्ग भ्रष्ट होने का टीका, तिलक, २३. कुछ पौराणिक शरीर पर कई प्रकार के पाखण्डपूर्ण चिह्न बनाते हैं। २५. ये सब चिह्न वेदशास्त्र विरुद्ध थे, २६. तिलक, कण्ठी, चक्र आदि सब का लोप हो गया, २७. वाणी पर चुप्पी का ताला लग गया, २८. शास्त्रार्थ करने वाले, २९. वाणी में प्रवाह था, ३०. वह ब्रह्मविद्या का भण्डार थे, ३१. उन्हें सब गूढ़ विद्यायें कण्ठस्थ थीं, ३२. तर्क की तेज़ रफ़्तार, ३३. तर्क व परम्परा की टक्कर, शास्त्रार्थ होता रहा, ३३. तर्क की तलवार की धार के समान सत्य चमक उठा, ३४. अन्धविश्वास निष्प्राण हो गया, ३५. सच्चाई को मान गया, ३६. मूर्तियों को व्यर्थ में सप्ताह भर भूका मारा, ३७. अन्तिम बार मूर्तियों को गंगास्नान करवाया ।

***

भाद्रपद १९२४ वि० अनूपशहर, उ० प्र०

११. पान का बीड़ा

ब्रह्मण कोई एक दिन पास आया ।
ऋषि के लिए पान का बीड़ा लाया ।।
ऋषि ने उसे पास अपने बिठाया ।
बड़े चाओ से पान लेकर चबाया ।।
गए जान फ़ौरण ऋषि ज़ायके से ।
कि हैं इसमें ज़हरे हलाहल के कतरे[१] ।।
वहीं पास कुटिया के बहती थी गंगा ।
गये और कै करके बीड़ा निकाला[२] ।।
किया योग से साफ़ आंतों को धो धो ।
न बाकी रखा सम्मे कातिल[३] का खटका ।।
बड़ी जमीयत[४] से कुटी में पधारे ।
ब्रह्मण था पहले ही ग़ायब[५] कुटी से ।।
ख़बर पा गई शहर में ख़ूब शोहरत ।
कि की मूज़ियों ने सफ़ाकाना हरकत[६]।।
जो देता है हर रोज़ अमृत की दावत ।
गये ज़हर देने उसे अहले बिद-अत[७]।।
था तहसीलदार इक मुसलमाँ वहां का ।
बदिल मोतकिद जोगिये नुक्तादां का[८] ।।
हुआ हस्बे दस्तूर[९] ख़िदमत में हाज़िर ।
कहा, साईं ! पकड़ा गया है वोह काफ़िर ।।
जो हो हुकम कर दें अदम का मुसाफ़िर[१०] ।
है खिंचने को बदज़ात का दार[११] पर सिर ।।

यह रुदाद[१२] सुनकर ऋषि तिलमिलाय ।
वहीं तैश में बाहर आपे से आय ॥
कहा हम हैं बन्दों को आज़ाद करते ।
नहीं कैद पर कैद ईजाद[१३] करते ॥
नई तर्ज़े उल्फ़त हैं ईजाद करते[१४] ।
हैं बदख़ाह[१५] को प्यार से याद करते ॥
सुनी गुफ़्तगू जब यह मर्दे खुदा की[१६] ।
रगे मेहर सैयद मुहम्मद की फड़की[१७] ॥
गिरा पाओं पर उठके फ़ौरण ऋषि के ।
कहा हम भी मुशताक हैं मुख़ल्सी[१८] के ।
रखा फिर जो बाहर कदम उस कुटी के ।
थे गुण गाते आज़ाद झोंके मुनि के ॥
असीरों को ज़िन्दां से जिसने निकाला[१९] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. घातक विष के कण, २. योग की क्रिया से वमन करके विष निकाला, ३. मारक विष, ४. शान्ति, ५. लुप्त, ६. दुष्टों ने क्रूर कर्म किया है, ७. दुष्ट जन, ८. वह हृदय से महान विद्वान् योगी का भक्त था, ९. नियमानुसार, १०. मृत्यु दण्ड देकर परलोक भेज दें, ११. फांसी, १२. कहानी, १३. बन्धनों को बढ़ाते नहीं, १४. प्रीति की नवीन रीति चलाते हैं, १५. द्वेष करने वाले, बुरा चाहने वाले, १६. प्रभु के प्यारे की यह वार्ता सुनकर, १७. दया की धमनियां फड़क उठीं, १८. हम भी मुक्ति के इच्छुक हैं, चाहने वाले, १९. कारागार से बन्दियों को छुड़ाने वाले ऋषि ।

ज्येष्ठ १९२५ वि० कर्णवास

१२. शमशीर-शिकन[१]

कर्णवास में थे महाराज उतरे ।
बड़ी देर से भाग[२] नगरी के जागे ।।
सरे शाम[३] हर रोज़ उपदेश देते ।
सदा वेद की ताज़ा गंगा बहाते ।।

कर्णसिंह ठाकुर के ससुराल थे वां ।
वोह आकर लगा करने मेले का सामां ।।

बड़े चाव से घर का आंगन सजाता ।
सदा रास का रंग उसमें जमाता ।।
बड़े पण्डितों को सभा में बुलाता ।
कन्हैया को राधा के पीछे नचाता ।।

बुला भेजा इक दिन ऋषि को सभा में ।
महाराज लीला की शोभा बढ़ायें ।।

ऋषि को हुई सुनके पैग़ाम नफ़रत ।
कहा हम समझते हैं लीला को बिदअत[४] ।।
लगे करने मूर्ख बुज़र्गों की ख़स्सत[५] ।
न थी नाच की कृष्ण योगी को आदत ।।

हम्मियत[६] की गर यूं न हो रग फड़कती ।
बहू बेटियों को नचा देखो अपनी ।।

सुना जब यह ठाकुर ने फ़रमां[७] ऋषि का ।
वहीं सूर्त बहर तुग़यां में आया[८] ।।

सुना दूसरे दिन–है उपदेश होना ।
कड़कता हुआ उनकी कुटिया में पहुंचा।।

सुनाकर ऋषि को बहुत उलटी सीधी ।
कहा–मौत आई है संन्यासी ! तेरी ।।

ऋषि उसको समझाते मीठे बचन से ।
कि बस राओ जी ! यह नहीं लछन अच्छे ।।
पड़े क्यों बड़ों की हो इज़्ज़त के पीछे ।
हो कहते जिसे माँ उसे हो नचाते ।।

निकाली मगर राओ ने तेग़े दो दम[९] ।
कि साईं चलो तुम बुज़र्गों के पेहम[१०] ।।

जो देखा ऋषि ने नहीं राओ टलता ।
नहीं उस पै जादू महब्बत का चलता ।।
है बेहूदा गुस्से में जलता उबलता ।
है गाली पै गाली बराबर उगलता ।।

उठे और ली छीन शमशीर उससे ।
ज़मीं पर जो टेकी तो थी चार टुकड़े ।।

कर्णवास जब दूसरी बार आय ।
तो ठाकुर ने जासूस उन पर लगाय ।।
कि जब नींद स्वामी को बेखुद सुलाय[११] ।
तो परलोक की सुबह उसको जगाय[१२] ।।

गये पास स्वामी के दो बार कातिल ।
मगर तेग़ हिलने से पहले रुका दिल ।।

उन्हें राओ ने तीसरी बार भेजा ।
कि जोगी का अब कि निकाल आना भीजा ।।
थी तकदीर हँसती तू कोशिश किये जा ।
करे वार जोगी पै किस का कलेजा ।।

जो "हूँ" कह के जोगी ने इक लात मारी ।
हुये छोड़ कर तेग़ कातिल फ़रारी[१३] ।।

पसीना पसीना थे दहशत के मारे ।
गरज शेर की सुनके बेखुद थे पारे[१४] ।।
हँसे खिलखिला कर फ़लक पर सितारे ।
फ़रिशतों से हम नग़्मा होकर पुकारे[१५] ।।

न शमशीर चलती है जिस पर न भाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. तलवार को तोड़ने वाला, २. भाग्य, ३. सायंकाल, ४. कुरीति, ५. नीचा दिखाना, ६. स्वाभिमान, ७. आदेश, उपदेश, ८. सागर के समान जोश आक्रोश में आया, ९. दोधारी तलवार, १०. पीछे वैसे इसका अर्थ निरन्तर है, ११. गहरी नींद आय, १२. ऋषि की परलोक में जाकर ही आंख खुले, १३. हत्यारे भाग खड़े हुए, १४. हिरण विनम्र पशु है गर्जना सुनकर होश उड़ गये । पारे किस भाषा का शब्द है पता नहीं । मूल में हिरण अर्थ छपा है, १५. फ़रिशतों व सितारों ने मिलकर यह गाना गाया ।

वि० संवत् १९२४ कर्णवास

१३. वृद्धा को गायत्री उपदेश

भरा था ज़बाँ में ऋषिवर[१] की जादू ।
थे सुन सुन के सब शहर के शहर लट्टू ।।
कई काफ़िरों को पहनाय जनेऊ ।
किया आर्य उनको जो पहले थे हिन्दू[२]।।
दिया पाक उपदेश गायत्री सबको ।
कि है वेद का इतर, याद इसको कर लो ।।
शरण में कहीं पीर ज़ाल[३] एक आई ।
थी नव्वे बर्स से बड़ी उमर उसकी।।
कहा कोई उपदेश कीजे ऋषि जी[४] ।
कहा, विर्दे गायत्री से मुक्त होगी।।
जो पूछा, हैं क्या हम भी पढ़ सकती मन्तर[५]?
कहा कहते जाहिल[६] हैं माता को शूदर ।।
तुम्हें सच्ची देवी हैं गुणवान कहते ।
हैं खुद सरस्वती वेद भगवान् कहते ।।
कहा हम को शूदर हैं शैतान कहते ।
हैं पापोश[८] माता को नादान कहते ।।
दिया वेद का सरस्वती[९] को नवाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. मूल में महर्षि छपा है, २. ऋषि जी हिन्दू शब्द को विदेशी आक्रमणकारियों का दिया हुआ घृणित नाम मानते थे । काशी के पण्डितों की भी यही व्यवस्था है कि हमारा वास्तविक नाम आर्य है ।, ३. वृद्धा, ४. यहां भी मूल में महर्षि छपा है, ५. पौराणिक दल के कई मुखिया आज भी स्त्रियों को वेद पढ़ने की अधिकारी नहीं मानते, ६. मूर्ख, अज्ञानी, ७. मूल में सुरस्ती छपा है, ८. जूती, ९. यहां भी मूल में सुरस्ती छपा है ।

१८६९ ई० कानपुर

१४. बिलकतों की चीख़ें

मगरमछ कहीं बीच पानी के निकला ।
रहे स्वामी लेटे वहीं बेतहाशा[१] ।।
पुकारा कोई वोह ! मगरमछ है आता ।
यह कहकर ऋषि ने पांसा न पलटा ।।
जो हमने कुछ उसका बिगाड़ा नहीं है ।
तो बदख़ाह[२] वोह भी हमारा नहीं है ।।

❊ ❊ ❊

सन् १८७० प्रयाग,

लबे गंगा[३] इक दिन था आसन ऋषि का ।
इस असना[४] में आ निकली वां एक बुढ़िया ।।
था हाथों पै उसके कोई मुर्दा बच्चा ।
किया चाहती थी उसे नज़रे गंगा[५] ।।
बहाने को जब उसके पानी में उतरी ।
लबे लाल[६] से उसके इक चीख़ निकली ।।
लपेटा था जो कपड़ा उस पर उतारा ।
कि जा बच्चे ! तू यां बरहना[७] था आया ।।
फटा देखकर अपने लहंगे का टांका ।
कलेजे के टुकड़े को नंगा बहाया ।।
यह हालत ऋषि की जब आंखों से गुज़री ।
कहा हिन्द है किस फ़लाकत[८] की बस्ती ।।
नहीं यां बरहने[९] को कपड़ा मुयस्सर[१०] ।
नहीं भूकों मरते को टुकड़ा मुयस्सर ।।

हो सामान क्या ज़िन्दगी का मुयस्सर ।
नहीं ज़हर खाने को पैसा मुयस्सर ।।
यह जीना है क्या बेहयाई का जीना ।
कफ़न ले के बच्चे का लहंगे में सीना ।।

***

सन् १९७४ भागलपुर

हुआ पार गंगा के इक रोज़ मेला ।
महर्षि गए देखने रंग उसका ।।
थे देवी की करते जहां भेंट पूजा ।
वहीं लड़कियों का चढ़ावा था चढ़ता ।।
हया[११] धर्म के नाम पर वां थी बिकती ।
घरों की जो थी इज़्ज़त अरज़ां[१२] थी बिकती ।।
ऋषि ने यह देखे हया सोज़ मन्ज़र[१३] ।
पड़ी कल न उनको, रहे सख़्त मुज़तिर[१४] ।।
रहे लौटते गर्म रेतों पै दिन भर ।
पड़े खोले रातों रहे दीदाय तर[१५] ।।
कि हे ! हे अभी हिन्द में जाँ है बाकी ।
नहीं आह ! इस डीठ को मौत आती ।।
ऋषि की सुनी आसमां ने यह ज़ारी[१६] ।
ज़मीं काँप उठी देखकर बेकरारी ।।
पसीजा[१७] समां देखकर फ़ज़ले बारी[१८] ।
होई गंग में राग की रौद[१९] जारी ।।
पसीने पै भारत के खूँ रोने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. निडरता से, २. बुरा चाहने वाला, ३. गंगा तट, ४. उसी समय, ५. गंगा की भेंट, ६. गूंगे अधरों से, ७. नंगा, ८. कंगाली, ९. नंगे को, १०. प्राप्त, ११. लज्जा, १२. सस्ती, १३. निर्लज्जता के दृश्य, १४. तड़पत, १५. सजल नयन, १६. रोना, पुकार, १७. पिछला, १८. ईश कृपा, १९. राग की नदी चल पड़ीं ।

अक्तूबर १८६९ ई० बनारस

१५. काशी की फ़तह[१]

चला जब न स्वामी पै जादू ज़बां का ।
न तकरीर का तेग़ ने तोड़ा टांका।।
किया ज़हर ने काम जब शीरो नां का[२] ।
गया सिक्का जम जोगिये नुक्ता दां का[३] ।।
यह सक्ता[४] था छाया हुआ पण्डितों में ।
न था फ़र्क कुछ पण्डितों और बुतों में ।।
कोई जाके काशी लिखा लाया पतरी ।
कि जायज़ है वेदों में पूजा बुतों की ।।
वोह पतरी ऋषि की जब आंखों से गुज़री ।
कहा–हम ने काशी की ली देख शेख़ी[५] ।।
गये शेर की तरह फ़ौरण गरज कर[६] ।
कि लो एक धावे में यह गढ़ हुआ सर ।।
हिले बेख़तर वआज़ से काशी वाले ।
यकायक उठे कांप सब बूढ़े बाले ।।
गये पण्डितों से न ओसां सम्भाले[८] ।
जहालत ने थे अकल पर पर्दे डाले।।
जिन्हें पूजते थे सभी कह के शङ्कर ।
किया उनको साबत ऋषिवर[९] ने कङ्कर ।।
यह रुदाद[१०] राजा के कानों में पहुंची ।
कहा आज है नाक काशी की कटती ।।
जो त्रिशूल पर शिव के काशी खड़ी थी ।
वोह धक्के से है एक साधु के हिलती ।

बुला भेजा नगरी के सब पण्डितों को ।
कि भूदेवयो[११] ! अब तुम बचाना बुतों को ।।
कहा पण्डितों ने है मनजूर राजन !
करो जिस तरह हम को मामूर[१२] राजन ।।
हमें दान दे देना भरपूर राजन ।
करें शीशाय कुफ्र[१३] हम चूर राजन ।।
मगर हम तो हैं और कुछ पढ़ने वाले ।
दयानन्द वेदों के लेगा हवाले[१४] ।।
हमें कर अता पन्द्रह दिन की मोहलत[१५] ।
करें वेद की मिल के ता खूब किरअत ।।
वोह साबत करें फिर बुतों की करामत[१७] ।
दयानन्द की तोड़ दें साफ़ हुज्जत[१८] ।।
रहा पन्द्रह दिन यह काशी का नकशा ।
कोई बात गढ़ता कोई वेद पढ़ता ।।
हुआ बहस का वक्त जब, पण्डित आय ।
बड़ा जमघटा साथ चेलों का लाय ।।
गुरु पालकी में थे आसन लगाय ।
थे नारों से शिश आसमां को उठाते[१९]।।
इधर पलटी काशी की सजधज थी सारी ।
उधर एक साधु था कोपनीधारी ।।
है साधु खड़ा पूछता धर्म क्या है ?
निशां उसका क्या क्या मनु ने कहा है ।।
ज़बां पर वहां सब की ताला लगा है ।
है झक झक ही करता जो लब खोलता है[२०] ।।
जो पूछा, अधर्म आप किस को कहेंगे ?
तो निकला न लफ्ज़ एक पण्डित के मुंह से ।।
चली बुत परस्ती पै तकरीर जब वां ।
तो लाया न उस पर कोई साफ़ बुरहां[२१] ।।

लगे झांकने आसतीने फुका दां[२२] ।
दलायल पै स्वामी की थी बज़्म हैरां[२३] ॥
वरक एक टूटा[२४] किसी ने दिखाकर ।
कहा वेद का देखना स्वामी ! मन्तर ॥
ऋषि ने नज़र थी अभी उस पै डाली ।
वहीं पीट दी उठ के राजा ने ताली ॥
यह तरकीब धोके की अच्छी निकाली ।
रही बात काशी की सबसे निराली ॥
वोह गुण्डे के आय थे रिशवत उड़ा कर ।
लगे फेंकने हर तरफ़ ईंट पत्थर ॥
किसी ने शरारत से जूता उछाला ।
किसी के कटा कान से साफ़ बाला ॥
किसी ने किया मुंह शराफ़त[२५] का काला ।
लिया गोबर और सर पै जातों के डाला[२६] ॥
गरज़ एक अन्धेर बरपा था हर सू[२७] ।
खड़ा मस्त कोने में था मौजी साधु ॥
थे कुछ बहस में अहले अख़बार आय[२८] ।
वोह सच्ची ख़बर बहस की वां से लाय ॥
हवा ने बहुत बर्की घोड़े उड़ाय[२९] ।
हकीकत के पैग़ाम आलम ने पाय[३०]॥
दलीलों पै काशी को जिसने उछाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. विजय, २. दूध व रोटी अर्थात् विष का प्रभाव विफल रहा, ३. शास्त्रमर्मज्ञ योगी दयानन्द की अमिट छाप पड़ी, ४. चकित, मूर्छित, ५. डींग, ६. एकदम सिंह समान गर्जना करते हुए गये, ७. उपदेश, ८. होश ऐसे उड़े कि संभल ही न पाए, ९. मूल में महर्षि है । हमें तो ऋषिवर ही जंचा, १०. कहानी, ११. ब्राह्मणो !, १२. नियुक्त, १३. अधर्म का दर्पण, १४. प्रमाण, १५. पन्द्रह दिन का

समय राजन दीजिये, १६. पाठ-वाचन, १७. महिमा, १८. तर्क, १९. शिष्य लोग गगनभेदी जयकारी गुञ्जाते, २०. जब मुंह खोलता, २१. युक्ति, २२. पण्डित वर्ग बस दायें बायें बस झांकते ही रह गये, २३. ऋषि की युक्तियों सुनकर सभा चकित थी, २४. जीर्ण शीर्ण पृष्ठ, २५. सज्जनता, शालीनता, २६. जाने वालों पर गोबर तक फेंका गया, २७. सब ओर, २८. कई विख्यात पत्र पत्रिकाओं के संवाददाता सभास्थल पर आये थे, २९. तारों से समाचार सर्वत्र फैला, ३०. संसार को सत्य का यथार्थ ज्ञान हो गया ।

विशेष टिप्पणी–काशी नरेश का नाम ईश्वरी नारायण सिंह था। मूल में भूल से माधोसिंह छपा है । **'जिज्ञासु'**

सम्वत् १९३७ काशी

१६. कीचड़ में कमल

थे इक दिन ऋषि सैर से लौट आते ।
जहाँ को जिनाँ ख़ाके पा से बनाते[१]।।
किसी गहरी धुन में कदम सुस्त उठाते ।
न जानें थे किस फ़िक्र में डूबे जाते ।।
जो देखें तो कीचड़ में गाड़ी अटी है ।
अयाँ[२] सिर पै साण्डों के शामत[३] बड़ी है ।।
खड़ा उन पै बर्साता सोंटे पै सोंटा ।
थे ग़ुस्से से बेबस हुआ गाड़ी वाला ।।
जो देखा नहीं काम सोंटे से चलता ।
गया हाँप आख़िर को दम हार बैठा ।।
इधर चूर बैल अपनी ताकत लगाकर ।
इधर गाड़ा वाला था बेताबो मुज़तिर[४] ।।
दयानन्द के दिल में तुग़याँ दया[५] का ।
मुसीबत से सांडों की यकलख़्त[६] उमडा ।
नम आँखें हुईं बह गया ग़म का दरया[७] ।
गया दर्द बैलों का उन से न देखा ।।
भड़क में न कुन्दन था जिन के बराबर[८] ।
वोह कीचड़ में उतरे दया से पिघल कर ।।
वोह पाकीज़ा मूर्त सख़ा की सफ़ा की[९] ।
न छूए जिसे ख़ाक हरगिज़ रियाकी[१०] ।।
भड़क दीद ने जिसको अपनी अता की[११] ।
था दिल नूर का गरचे कालिब था ख़ाकी[१२] ।।

परम हँस दाग़े गुनाह धोने वाला ।
कँवल बनके कीचड़ में आज आप उतरा[१३] ।।

दिये बैल खोल उनको दलदल से हांका ।
रखा अपनी गर्दन पै गाड़ी का जूआ ।।
न बैलों की जो दोहरी शक्ति[१४] से हिलता ।
ऋषि ने वोह बोझ आप इकले[१५] सम्भाला ।।

बड़ा कौन है जिसने छोड़ी बड़ाई ।
दया क्या जो न बे ज़बानों पै उमड़ी[१६] ।।

इधर गाड़ी कीचड़ से आती थी बाहर ।
उधर गाड़ी वाला था झुकता ज़मीं पर ।।
फ़रिश्तों में होती थी अश अश बराबर[१७] ।
कहा देवताओं ने यूँ सुर मिलाकर ।।

सिसकतों को दलदल से जिसने निकाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. संसार को अपनी चरण धूलि से स्वर्ग बनाते । जिनान अरबी शब्द है । यह बहिश्त का बहुवचन है ।, २. प्रकट, ३. विपदा, ४. आकुल व्याकुल. ५. दया की बाढ़, ६. आवलम्ब—देखते ही दया का तूफ़ान उमड़ आया, ७. नयन सजल हो गये और दु:ख चिन्ता की नदी अश्रुधारा बनकर बहने लगी, ८. चमक में कुन्दन भी उनके समान न था, ९. वह परोपकार व निर्मलता की पवित्र मूर्ति थे, १०. ऋषि को कपट की मैल कदापि न छू पाती थी, ११. नयनों की ज्योति ने जिसे अपना तेज प्रदान किया, १२. हृदय तो ज्योति का था भले ही मिट्टी से बना था, १३ हँस को कीचड़ नहीं लिपटता और कमल को भी कीचड़ नहीं लिपटता । परमहँस दयानन्द कमल बनके कीचड़ में उतरे ।, १४. मूल में यहां ताकत था, १५. यहां मूल में तन्हा शब्द था, १६. 'दया क्या जो न मूक पशुओं पै उमड़ी, ऐसा बोलना अधिक अच्छा लगेगा, १७. निरन्तर वाह ! वाह ! कही।

* * *

ई० १८७४ मथुरा

१७. जोगी का जलाल[१]

थे मथुरा में इक रंगाचार्य ब्राह्मण ।
ऋषि के गुरु जी से थी उनकी अनबन।।
बढ़ा देखकर उनके चेले का जोबन ।
दयानन्द के हो गये जानी दुश्मन।।

जो देखा नहीं तेग़[२] जोगी पै चलती ।
नहीं ज़हर देने से याँ दाल गलती ।।

कहा दिल में है यह कवी ब्रह्मचारी[३] ।
कहीं जीत होती है इस पर हमारी ?
गई पूजती गर इसे ख़ल्क[४] सारी ।
नहीं बुत को ढूंढे से मिलना पुजारी[५]।।

लगे कहने चेलों को सच्चे सपूतो ।
तुम्हीं इसके लंगोट पर दाग़ धर दो[६] ।।

वहीं पास डेरा था इक फ़ाहशा का ।
निपट बेहयाओं[७] ने जा उसको घेरा।।
कहा पांच सौ का यह हाज़िर है गहना ।
रहा पांच सौ और का तुझ से वादा[८] ।।

दयानन्द जोगी को गर फांस लाय ।
तो मुंह मांगा इन-आम फिर और पाय ।।

तवायफ़[१०] गई पास जोगी के दौड़ी ।
जो देखे हैं-जोगी लगाय समाधी ।।

बरसता है इक नूर सूरत से उसकी ।
कहा हम से यूं तो शरारत न होगी ।।

गई वापस और पण्डितों को बुलाया ।
कि जोगी है इस्मत की देवी का जाया[११] ।।

कुछ इन-आम को पण्डितों ने बढ़ाया ।
तवायफ़ को सोने का चकमा[१२] चढ़ाया ।।
कुछ उसको लुभाया कुछ उसको डराया ।
कहा-तुझ को वापस है जमदूत लाया ।।

नहीं तुझ से होती अगर और हिम्मत ।
तो कह दीजो, "मत कर दयानन्द हरकत" ।।

तवायफ़ गई पास डरकर कुटी के ।
कि इक बार छू देखो पाँव ऋषि के ।।
गई सामने जब तपस्वी जति के ।
हिलोरें[१३] लगी लेने पाकीज़गी के।।

गुनाह ने कहा दिल से घबरा के "रुख़सत"[१४] ।
यकायक तबीयत से भागी शरारत ।।

समाँ ऐसा भोली तवायफ़ ने देखा ।
न बैकुण्ठ में जो गरुड़ को मिलेगा ।।
था इस्मत का वाँ झूलता 'इक'[१५] पंगूरा ।
कि दिल बेखुदी के झकोरे था लेता ।।

दिये डाल बेखुद तवायफ़ ने ज़ेवर ।
किया सर चरण पर ऋषि के निछावर ।।

ऋषि ने समाधि से जब आंख खोली ।
तो देखा-है मौजूद इक लड़की भोली ।
न हो मुकत्फ़ी[१६] जैसे गहनों की झोली ।
लड़ी आंसुओं की थी उस ने पिरो ली ।।

कहा माई क्या लाई जोगी के डेरे ।
वोह बोली कि बाबा ! यह हैं पाप मेरे ॥

किये सख़्त इसरार[17] से पेश ज़ेवर ।
ऋषि जी ने लौटा के बख़्शा उसे बर[18] ॥
रहे तेरा बेदाग़ इस्मत का जोहर[19] ।
कुटी के यही गूञ्ज थी बाहर अन्दर ॥

है मुंह जिसकी इस्मत से असियां का काला[20] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. तेज, २. तलवार, ३. पक्का ब्रह्मचारी, ४, ५. सारा संसार यदि इसी प्रकार इसके पीछे लगता गया तो मूर्तियों को पुजारी कहां से मिलेंगे ?, ६. इस के चरित्र पर कोई लांछन लगाओ, ७. वेश्या, ८. सर्वथा निर्लज, ९. इतना और वचन पक्का रहा, १०. वेश्या, ११. यह योगी ऋषि तो पवित्रता का पूत है, १२. लोभ दिया, चक्कर में लाय, १३. पवित्रता की तरंगें हृदय में उठने लगीं । मूल में 'हिलोड़' छपा है । यह किताबत की अशुद्धि है ।, १४. वेश्या के पापों ने घबराकर उसके हृदय से विदाई ली–भाग खड़े हुए ।, १५. 'इक' शब्द हमारे विचार में मूल में छूटा हुआ है । पंगूरे पर पवित्रता के ऐसे झूले आय कि उस पर पवित्रता की मस्ती छा गई । वह स्वयं को भूल सी गई ।, १६. आभूषण जो उतारे थे, उससे जैसे झोली ख़ाली रह गई, उसने बीच में अश्रुओं की माला की लड़ी भी पिरो कर डाल दी । १७. हठ, १८. वर, १९. जा ! तेरा जीवन अब निष्कलङ्क बीते । पवित्र जीवन के मार्ग को अपना ।, २०. जिसके पुण्य प्रताप से पाप का मुंह काला हो गया। उस दयानन्द यतिराज का बोलबाला हो।

* * *

सन् १८७७ ई०   चाँदापुर

१८. ताला टूटा

थे रहते कई चाँदापुर में कबीरी[१] ।
घराने का था उनके विरसा अमीरी[२] ।।
बहुत अपने मज़हब की देखी हकीरी[३] ।
कबीरी धरम ने न की दस्तगीरी।।

हुई मुसलमानों से तकरार[४] उनकी ।
महीनों ज़बाँ ज़द[५] रही हार उनकी ।।

बहुत से शरआ वालों[६] ने उनको चिढ़ाया ।
पसन्द आया उनको न मज़हब पराया[७] ।।
ऋषि का पता उड़ती ख़बरों में पाया ।
बचन लेकर आने का हीला[८] लगाया ।।

बहुत पादरी मौलवी करके मदअऊ[९] ।
कहा बहस कर लो यह आय हैं साधु ।।

ऋषि ने जो खोला दलायल का दफ़तर[१०] ।
मुआलिफ़ थे हैराँ मुख़ालिफ़ थे शशदर[११] ।।
किसी ने कहा कुफ़्र है बहस दीं पर[१२] ।
कोई बोला है अकल ईमां पै खंजर[१३] ।।

ऋषि की जो बातें सुनीं प्यारी प्यारी ।
हज़ार आफ़रीं ! कह उठी बज़्म सारी[१४] ।।

यह पहली ही नोबत थी सदियों के पीछे[१५]।
कि ग़ैरों के सर ख़म थे अपनों के आगे[१६] ।।
जो नित भागतों का त-आकुब थे करते[१७] ।
बचाओ की आज अपनी राह ढूंढते थे ।।

दिया कच्चे आटे का मशहूर थे हम[१८] ।
किसी को ख़बर क्या कि खुद नूर थे हम[१९]।।

* * *

सन् १८७७ ई० देहली

इस असना में दरबार लिट्टन का आया[२०] ।
ऋषि जी[२१] ने जमना पै डेरा लगाया ।।
था दर्शन से महजूज़[२२] अपना पराया ।
बहुत अहले दरबार ने लुत्फ़[२३] उठाया ।।
जो थे उन दिनों पेशवायाने मिल्लत[२४] ।
ऋषि जी ने दी उनको इक रोज़ दावत[२५]।।
मुसलमान, ईसाई, ब्रह्मो समाजी ।
ऋषिवर ने सब को धरम की सला दी[२६]।।
कहा क्यों अलग फिरते हो भाई भाई ।
है तलकीन[२७] वेदों की हम सब को साझी ।।
है अज़ली खुदा की यह तालीम अज़ली[२८]।
न बदली गई है न जायेगी बदली ।।
न गो वेद पर लाय अग़ियार ईमां[२९] ।
ऋषि की सदाक़त के थे सब सना ख़ाँ[३०] ।।
कहा हिन्द का है यह रूहानी सुल्ताँ[३१] ।
ज़बाँ पर था कुहसारो दरया की हाँ ! हाँ[३२]।।
वोह टूटा जो था वेद विद्या पै ताला[३३] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. सन्त कबीर जी के अनुयायी, चाँदापुर शाहजहाँपुर से कोई १२ किलोमीटर की दूरी है ।, २. सम्पन्न घराने के थे, ३. निरादर, ४. वाद विवाद, ५. महीनों इसकी चर्चा रही, ६. मुसलमानों ने, ७. परकीय पन्थ, ८. यह हीला बहाने अर्थ वाला नहीं है। इसका अर्थ हाँक लगाना, आवाज़ लगाना, बुलाना है । धक्का लगाना भी अर्थ है ।, ९. निमन्त्रण देकर, १०. तर्क पर तर्क देने आरम्भ

किये, ११. मित्र चकित थे तो विरोधी भी दंग रह गये ।, १२. मुसलमानों की ओर से देवबन्द के मौलाना मोहम्मद कासिम मुख थे । ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट मुख थे । वहां कहा गया कि मज़हब पर वादविवाद कुफ्र है ।, १३. किसी ने कहां बुद्धि व ईमां पर वादविवाद खंजर चलाने वाली बात है ।, १४. सारी सभा वाह ! वाह ! कह उठी ।, १५. कई शताब्दियों के पश्चात् यह अपने ढंग की प्रथम घटना थी कि विधर्मियों से आर्य धर्म के मानने वालों ने शास्त्रार्थ किया।, १६. विधर्मियों के सिर झुका दिये । पांच विषयों पर शास्त्रार्थ होना था परन्तु सृष्टि के उपादान कारण, सृष्टि क्यों व कब रची गई तथा मुक्ति व उसके साधन पर ही विचार हुआ था कि सब मौलवी व पादरी यह कहकर चले गये कि मेला समाप्त हो गया है ।, १७. पीछा किया करते थे, १८. हिन्दू धर्म को आटे का दीपक कहा जाता था जिसे बाहर कव्वे न छोड़ें और भीतर चूहे खा जायें ।, १९. हमारे पास वेदरूपी ज्ञान भानु है ।, २०. इसी समय लार्ड लिटन का देहली दरबार आ गया । ऊपर लिटन का लिट्टन हमने किया है ।, २१. मूल में महर्षि था हमने ऐसा किया है, २२. आनन्दित, २३. आनन्दित, २४. जाति के नेतागण, २५. निमन्त्रण दिया, २६. पुकारा, यहां भी मूल में महर्षि था।, २७. वेद का उपदेश मनुष्य मात्र के लिये है ।, २८. नित्य ईश्वर का नित्य ज्ञान ।, २९. चाहे विधर्मी वेद पर विश्वास नहीं लाये ।, ३०. ऋषि की सच्चाई की सबने प्रशंसा की, ३१. आध्यात्मिक सम्राट्, ३२. नदियां पर्वत भी यही गा रहे थे, ३३. ऋषि से पूर्व स्त्री शूद्र को ही वेद सुनने व पढ़ने का अधिकार नहीं था । अब मानव मात्र के लिये वैदिक धर्म के द्वार ऋषि दयानन्द ने खोल दिये । ताला टूट गया।

❋ ❋ ❋

१८७५ ई० मुम्बई

१९. पूणे का स्वांग

थे दिन रात अब रहते स्वामी सफ़र में ।
गुज़र जाते हफ़तों[१] उन्हें रहगुज़र[२] में ।
कभी इस नगर में कभी उस नगर में ।
गये पहुंच फिरते महाराष्ट्र में ॥

किया बम्बई में जो इक बार डेरा ।
तो पहला समाज अपने हाथों से खोला ॥

किसी को ख़बर क्या ? यह है रूह[३] उनकी ।
रखी है सदाकत[४] की याँ नींव पक्की ॥
यही अकल को नकल से है मिलाती[५] ।
यहीं से जहाँ को हदायत मिलेगी ॥

यहीं बे नवा[६] अपना रोयेंगे रोना ।
इसी को है भारत का हर दाग़ धोना ॥

यहीं होंगे असलाफ़[७] के नाम लेवा ।
यही वेद विद्याओं के पानी देवा ॥
अनाथों के विधवाओं के नाओ खेवा ।
करेंगे यही रोते दुखियों की सेवा ॥

ग़ज़ा भूके मरतों को पहुंचायेंगे यह ।
पुकार उनकी सुनकर तड़प जायेंगे यह ॥

दिखायेंगे यह भूले भटकों को रस्ता ।
निकालेंगे रहरों[८] के पांव से कांटा ॥

यही डूबतों की उभारेंगे नैय्या ।
यही दिल शिकस्तों[९] का होंगे सहारा॥

ऋषि ने बज़ाहर[१०] समाज अपना खोला ।
जो सच्च पूछो इक खेत रहमत का बोया[११] ॥

पधारे वहां से महाराज पूणा ।
जो अज़मत[१२] का है मरहटों की नमूना ।
शिवाजी ने बख़्शा जिसे फ़ख़र[१३] दूना ।
नहीं अब भी यह शहर बीरों से सूना ॥

शिवाजी की है धाक देती सुनाई ।
है सरकार ने छावनी वाँ बनाई ॥

ऋषिवर ने वेदों का डंका बजाकर ।
किया ज़ेर बातिल को सच्च को मुज़फ़्फ़र[१४]॥
थे उपदेश मिसरी की डलियां सरासर ।
दिलों में किया मीठी शिक्षाओं ने घर ॥

थे जज उन दिनों इस नगर के रणाडे ।
हुए मौतकिद[१५] सच्चे दिल से ऋषि के ॥

जलूस एक दिन अपने घर से निकाला ।
सजा कर रखा फील[१६] पर आसन उनका ॥
चले हमरकाब[१७] आप और शहर सारा ।
बजा धर्म का सब मुहल्लों में डंका ॥

सदाकत ने पाई जो हर सू अशायत[१८] ।
शरारत से आय न बाज़ अहले बद-अत[१९]॥

किसी ने कहा दूसरे दिन ऋषि से ।
जलूस आज एक और निकला गली से ॥
गधे पर चढ़ा था कोई दिल लगी से ।
"दयानन्द" कहते थे उसको हंसी से ॥

कहा इस में इज़्ज़त है दूनी हमारी ।
है नकली दयानन्द की ख़र सवारी[२०] ।।

कहा–उसको देते हैं बदज़ात गाली ।
कहा–पेट होने दो गाली से ख़ाली ।।
हुआ फ़हश[२१] रुख़सत का है अब सवाली ।
अभी गुफ़्तगू[२२] लेना सुन वेद वाली ।।

कहा–जन्म का तुम को कहते हैं शूदर ।
कहा–जन्म से सब हैं शूदर से कहतर[२३] ।

गुरु से जो विद्या पढ़े और पढ़ाय ।
वोह शूदर भी रुत्बा ब्राह्मण का पाय ।।
है खत्री जो मैदां में हिम्मत दिखाय ।
वोह है वैश जो धन हुनर[२४] से कमाय ।।

बड़ाई नहीं ज़ात की काम आती ।
यहां पूछते हैं हुनर अपना ज़ाती ।।

कहा फेंकते नाम लेकर हैं कङ्कर ।
कहा वोह ? जिसे मानते कल थे शङ्कर ।।
बज़ाहर अदावत पै आए हैं तन कर ।
हुए मेरे पैरो[२५] यह बदख़ाह बनकर ।।

भगत ने सुनी जब ऋषि की यह बातें ।
गईं दिल में कर उसके घर झट यह घातें ।।

कहा तुम शराफ़त[२६] की मूरत हो स्वामी ।
निरी मेहर बे लाग रहमत हो स्वामी[२७] ।।
दिल अफ़रोज़ रखते तबी-अत[२८] हो स्वामी ।
हकीकत में अहले करामत[२९] हो स्वामी ।।

इवज़ गालियों के दुआ देने वाला[३०] ।।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

१. कई कई सप्ताह, २. मार्ग में, यात्रा में, ३. आत्मा, ४. सत्य, ५. बुद्धि, वेद शास्त्र व परम्परा का मेल करवाती है।, ६. असहाय-दुखिया, ७. पूर्वज, ८. पथिक, ९. टूटे हृदयों का, १०. देखने को, ११. परोपकार की खेती की, १२. गौरव गरिमा, १३. गौरव मान, १४. झूठ को झुकाकर सत्य को विजयी बनाया, १५. अनुयायी, १६. हाथी, १७. साथ-साथ चले, १८. सब ओर सत्य की धूम मच गई, १९. शरारती दुष्ट जन न रुके, २०. गधे पर तो नकली दयानन्द सवार है, २१. लज्जाजनक बात, २२. वार्तालाप, २३. छोटे, २४. गुण-कर्म, २५. पीछे चलने वाले, २६. सौजन्य, २७. आप सर्वथा दया हो, परोपकार का शुद्ध रूप हो, २८. हृदय को ज्योतित आनन्दित करने वाला स्वभाव, २९. महामहिमा वाले, महिमावान! महापुरुष हो, ३०. गालियों के बदले में अशीष देने वाले हो।

संवत् १९२४ वि० अनूपशहर

२०. पराये और अपने

किनारे पै गंगा के थे जब बिचरते। मुसीबत पै भारत की सर्द आहें भरते॥
महीनों थे जब फ़ाका करते गुज़रते। किसी शाम बैठे थे उपदेश करते॥

गया ले के नाने जवीं[1] एक नाई।
ऋषि ने वोह ली चाव से और खाई॥

किसी ने कहा देख तो लेते दण्डी। यह है एक नापाक नाई की रोटी॥
है छूने से इसके हमें छूत लगती। कहा छूत है पाक लोगों से डरती॥

"यह रोटी नहीं नाई की, गेहूं की है।
अकीदत की इस में भरी चाशनी है॥"[2]

❊ ❊ ❊

संवत् १९३५ वि०

सभा में कहीं मज़हबी एक आया।
वोह पहले ही डर कर बहुत दूर बैठा[3]॥
किसी ने मगर नीचे बैठे को डांटा।
कि इस साध संगत[4] में क्या काम तेरा॥

ऋषि तैश में आय डांट उसकी सुनकर।
कहा, मज़हबी को ही हम देंगे लैक्चर॥

उसी ख़ाक से है बना जिस्म इस का।
हमारा हुआ जिससे तैयार बोता[5]॥
जनम मुझ को और तुम को है जिसने बख़्शा।
उसी मादरे हिन्द का है यह बेटा॥

समझता हूं मैं इसको मां जाया भाई ।
तुम्हें मेरे भाई से है छूत लगती ॥

❊ ❊ ❊

संवत् १९३८ वि०, मुम्बई

कहीं बम्बई में था आसन ऋषि का ।
वहां एक बंगाली दर्शन को आया ॥
वोह प्यासा था पानी का घूंट उसने मांगा ।
दिया भर के भगतों ने पत्तों का दौना ॥

था बंगाली रखता बड़ी लम्बी दाढ़ी ।
सो भगतों ने समझा मुसलमां है कोई ॥

ऋषि ने जो देखा यह दिलसोज़ मन्ज़र[६] ।
कहा, हिन्दुओं की समझ पर हूं शशदर[७] ॥
मुअज़ज़[८] कोई आय महिमान बनकर ।
यह हैं जानते उसको हैवां से कमतर[९] ॥

नहीं उससे इज़्ज़त का बर्ताव करते ।
हैं छूने से इन्सां के इनसान डरते ॥

यह हिन्दू कुछ इनसानियत न[१०] दिखाते ।
कि इन्सां को हैं देखकर दुम दबाते ॥
पराया नहीं कोई अपना बनाते ।
हैं लख़्ते ज़िगर[११] रोज़ लाखों गंवाते॥

हुये जिस पै बेगाने शैदा दवाला[१२] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. जौ की रोटी, २. इसमें श्रद्धा की मिठास भरी पड़ी है, ३. यह घटना रुड़की उ०प्र० की है । सिखों में दलित सिख को मज़हबी सिख कहा जाता है। उस मज़हबी सिख को मुनीर खां नाम के पोस्टमैन ने सभा में आगे बैठने के लिए डांटा था ।, ४. सिखों में धार्मिक सभा में श्रोताओं को 'प्यारी साध संगत जी'

क़हकर सम्बोधित किया जाता है, ५. शरीर, ६. दिल को दुखाने जलाने वाला दृश्य, ७. दंग, ८. प्रतिष्ठित, ९. पशु से भी हीन, १०. मूल में 'नहीं' है । हमें 'नहीं' यहां उपयुक्त नहीं लगा अतः 'न' कर दिया, ११. जिगर के टुकड़े, जाति के लाखों लाल इसी अस्पृश्यता के कारण विधर्मी बन गये ।, १२. मोहित, बलिहारी, मूल में 'दवालह' शब्द है । उच्चारण में 'ह' जो अन्त में है उसका उच्चारण आ जैसा ही होता है यथा उर्दू में 'कोह हिमाला' में 'ल' के पीछे भी वही 'ह' होती है परन्तु उच्चारण करते समय 'हिमाला' ही बोला जाता है । 'दवाला' का भाव तो यहां स्पष्ट ही है परन्तु यह शब्द हमें उर्दू फ़ारसी के कोशों में नहीं मिला।
'जिज्ञासु'

संवत् १९२७ वि० कासगंज

२१. लंगोट वाला

दयानन्द थे बे बदल[१] ब्रह्मचारी । न भटकी कभी पास सुपने में नारी।।
रियाज़त[२] में उठती जवानी गुज़ारी । कटीं पाक अशग़ाल[३] में उमर सारी।।

मुशक्कत ने था जिस्म को वोह कमाया[४] ।
कि भट्टी में हो शर्म से लाल लोहा ।।

खड़ा साण्ड था एक दिन रहगुज़र[५] में ।
बड़े तैश से उसकी थीं लाल आंखें ।।
जो साथी थे भागे सभी दायें बायें ।
ऋषि की रहीं गर्म रफ़्तार टांगें[६]।।

किसी ने कहा, गर वोह शोख़ी दिखाता[७] ?
कहा मैं पकड़ कर उसे चित्त गिराता ।।

※ ※ ※

संवत् १९३४ वि०, जालन्धर

ऋषि जी थे जालन्धर इक बार उतरे ।
शरण में सदा बिक्रमा सिंह आते ।।
हुए एक दिन यूं मुख़ातिब[८] ऋषि से ।
हैं गुण ब्रह्मचारी के सब शास्त्र गाते ।।

लिखा है, है ज़ोर उसमें हाथी का होता ।
यह है बात सच्ची या शेख़ी सरापा[९] ?

रहे स्वामी ख़ामोश बात उनकी सुनकर ।
कोई छेड़ दी दास्तां दिल निशीं तर[१०] ।।
लगे जाने सरदार बग्घी पै चढ़कर ।
तो गाड़ी वोह हिलने में आई न मू भर[११]।।

जो देखे हैं स्वामी ने पीछे से रोकी ।
कहा ताकत अब ब्रह्मचारी की देखी ।।

बड़े पहलवान आय इक दिन सभा में ।
ऋषि ने कहा कलमा अपनी सना में[१२] ।।
कि ताकत बड़ी होती है इत्तिका[१३] में ।
हैं हम एक बाज़ू उठाते हवा में ।।

गिरा दो इसे ज़ोर सारे लगा कर ।
तो हम जानें कोई है तुम में तनावर[१४] ।।

बड़ी देर तक मुन्तज़िर थे ऋषि[१५] जी ।
कि देखें कोई सामने आता है भी ।।
रही सारी मजलिस[१६] पै छाई ख़मोशी ।
यह आवाज़ फिर यकबयक[१७] गूंज उठी ।।

नहीं हम में तुझ जैसा लंगोट वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. अद्वितीय, २. तपस्या, ३. पवित्र रुचियों में, कामों में, ४. श्रम से, तप से शरीर को सुकठोर बनाया, ५. मार्ग, ६. पूर्ववत् तीव्र गति से चलते रहे । ७. शरारत करता, ८. सम्बोधित करके कहा, ९. सर्वथा डींग है क्या । १०. प्यारी लगने वाली कोई रोचक चर्चा चला दी, ११. बाल भर (तनिक भी) न हिली, १२. अपनी प्रशंसा में बात कही, १३. संयम, १४. बलवान, १५. मूल में 'महर्षि' छपा है, १६. सभा में, १७. तत्काल, एक साथ ।

* * *

१८६९ ई० कानपुर

२२. हँसी

किसी ने ऋषिवर से मांगा कमण्डल ।
कि मन्दिर में ठाकुर हैं, डाल आऊं वाँ जल ।।
कहा—या बड़े आलसी या हो पागल ।
हो साथ अपने रखते कमण्डल मुक़फ़ल[१] ।।
कहा है कमण्डल मिरा घर पै स्वामी ।
कहा—मुंह जो है इस में भर जाओ पानी ।।

* * *

१८७५ ई० बड़ोदा

ऋषिवर[२] थे इक दिन कराते हजामत ।
कोई आये दर्शन को अहले फज़ीलत[३] ।।
कहा—अब भी हो स्वामी ! मुशताके ज़ीनत[४] ।
रहे दूर ज़ीनत से अहले करामत[५] ।।
कहा बाल हैं जिस करामत का मज़हर[६] ।
हैं रीछ इस करामत में हम सब से बरतर[७] ।।
है आरायशे[८] तन की सब को हदायत ।
सफ़ाई बदन की है दिल की तहारत[९] ।।
यही है शराफ़त[१०]—यही है करामत ।
लगा कहने रह रह के अहले फ़ज़ीलत ।।
हंसी में है रंगे हदायत निराला[११] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ।।

---

१. ताला लगाकर रखा; २. मूल में महर्षि छपा है, ३. विद्वान्, ज्ञानी, बड़ा व्यक्ति, ४. सजावट चाहने वाला, ५. बड़े महात्माओं को तन की सजावट से दूर रहना चाहिए, ६. जिस बड़प्पन को बाल प्रकट करें, ७. ऊंचा, बढ़िया, ८. तन की शुचिता, ९. शरीर की शुचिता हृदय की शुद्धता है, १०. सज्जनता, शालीनता, ११. मनोविनोद में उपदेश की अच्छी शैली है ।

२३. अमर आत्मा

दयानन्द सा भी कोई बे ख़तर[१] है ।
न जिसको तबर[२] का, न ख़ंजर का डर है ।।
न सुल्ताँ की[३] धमकी का जिस पर असर है ।
न रिशवत ही लेकर जिसे दर गुज़र है[४] ।।

खरी खोटी जो सब है बे लाग कहता ।
है पानी को आब-आग को आग कहता ।।

***

विक्रमी १९२४ कर्णवास

कलक्टर ऋषि[५] जी के दर्शन को आये ।
ख़बर भेजी आने की अन्दर कुटी के ।।
जवाब आया जोगी हैं मसरूफ़[६] बैठे ।
जो वक्त और फ़ारग[७] हो, उस में मिलेंगे ।।

कलक्टर ने कह भेजा फ़ारग़ हूं दिन भर ।
कुटी से यकायक[८] ऋषि आय बाहर ।।

कहा भाई ! तुम इक ज़िला के हो अफ़सर।
तुम्हें इस कदर फिर फ़राग़त है क्यों कर ?
रिआया की हालत इसी से है अबतर[९] ।
कि हैं आप से फ़ारग़ उन पर कलैक्टर ।।

सुनी जब यह तंबीह मर्दे खुदा से ।
कलक्टर थे मारे हया के ज़रा से ।।

***

विक्रमी १९३० सन् १८७९

बरेली में होता था स्वामी का लैक्चर ।
उसे सुनने आय थे साहिब कमिशनर ।।
ऋषि ने कहा हिन्दुओं को यह हंसकर ।
नहीं कौम मूरख कोई तुम से बढ़कर ।।

भला पांच की जिसको कहते हो बीवी ।
कंवारी रही किस तरह वोह दरौपदी ।।

जो अग़ियार[१०] थे वाँ हँसे खिलखिला कर ।
निगाहें थीं सब हिन्दुओं की ज़मीं पर[११] ।।
ऋषि जी वहीं बोले पांसा पलट कर ।
नसारी की दानाई है इससे बढ़कर[१२]।।

कोई इस ख़िरद[१३] के धनी को कहे क्या?
कंवारी से भी होते हैं बेटे पैदा ?

भड़क उठे सुनकर कमिशनर महाशय ।
लगे घूरने दीदाय ख़शमगीं से[१४] ।।
हंसी अब थी काफ़ूर होंटों से उनके ।
रहे हसबे दस्तूर[१५] स्वामी गरजते।।

कमिशनर ने रमज़ों में पैग़ाम भेजा[१६] ।
कि स्वामी ! यह मज़हब पै सख़्ती है बेजा[१७]।।

हुआ दूसरे दिन जब उपदेश उनका ।
तो मज़मून रूहों की हस्ती का छेड़ा[१८]।।
कहा आतमा मार दो कोई मेरा ।
कमिशनर की धमकी को फिर मैं सुनूँगा।।

हकीकत में[१९] जब हमको मरना नहीं है ।
तो फिर साफ़ कहने से डरना नहीं है ।।

अबस लोग हैं मौत को समझे हव्वा[२०] ।
पुराना बदलते हैं हम इस में कुर्ता ॥
कमिश्नर महाशय ! नया पैराहन[२१] ला ।
कमिशनर वहीं वजद[२२] में कहता उठा ॥

तू है आतमा-तू नहीं मरने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ॥

---

१. निर्भय, २. कुल्हाड़ा, ३. राजा, ४. घूस लेकर भी टलने वाला नहीं, ५. बुलन्दशहर का कलक्टर था, ६. व्यस्त, ७. जब व्यस्त न हों तब, ८. तुरन्त, तत्काल, ९. प्रजा की इसी कारण दुर्दशा हो रही है, १०. पराय-ईसाई व मुसलमां, ११. हिन्दुओं की आंखें नीची हो गयीं, १२. ईसाई इससे भी अधिक बुद्धि वाला है, १३. बुद्धि, १४. क्रुद्धित आंखों से लगे देखने, १५. पूर्ववत्, १७. यह मज़हब पर अनुचित प्रहार है, १८. आत्मा का विषय ले लिया, १९. वास्तव में, २०. लोग व्यर्थ में मौत से भयभीत होकर इसे हव्वा (Bugbear) समझते हैं । २१. नया चोला लाओ, २२. मस्ती में ।

* * *

१८७८ ई० अमृतसर

२४. फूलों की बर्खा

मुबारिक वोह सा-अत[१] थी अच्छी घड़ी थी ।
पधारे दयानन्द नगरी गुरु की ।।
लगाते थे जो बासी पानी में डुबकी ।
ऋषि ने उन्हें बख़्शा अमृत हकीकी[२] ।।
ज़बां में था इजाज़[३] स्वामी के क्या क्या ।
मसीहाई[४] करता था उपदेश उनका ।।
कई ऐसे भी थे वहां अहले बिद-अत[५] ।
जो रहते थे हर वक्त मसरूफ़ ख़िस्सत[६] ।।
जिन्हें धर्म से थी जन्म की अदावत[७] ।
तबीयत में जिनकी भरी थी शरारत ।।

लगे फेंकने सिर पै स्वामी के पत्थर ।
ऋषि बोले "पत्थर हैं मुझको गुले तर"[८] ।।

रहे हसबे दस्तूर इजाज़ करते[९]
कहीं शेर भी गीदड़ों से हैं डरते ।।
जो जाहिल शरारत में हद से गुज़रते ।
ज़बां में यह अपनी मिठास और भरते ।।

इवज़[१०] धूल के फूल बर्साने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

१. समय, घड़ी, २. वेदामृत ईश्वर की सच्ची वाणी का उपदेश सुनाया, ३. जादू, चमत्कार, ४. ईसा के बारे में कहा जाता है कि वह मृतकों को जीवित किया करता था, ऋषि के वचन सुनकर मृतकों में, मुर्दा जाति में नवजीवन का सञ्चार हुआ, ५. दुष्प्रवृत्ति वाले, ६. पाप करने वाले पर तुले रहते थे, ७. द्वेष, ८. कोमल फूल, ९. स्वभाव के अनुसार लोगों को दंग करते रहे, १०. बदले में, मूल में घटना का सन् अशुद्ध छप गया । यह ईंटें पत्थर १८७८ ई० में सरदार भगवान् सिंह के विशाल भवन में बर्साई गई थीं । **'जिज्ञासु'**

१८८३ ई० मेवाड़

२५. मातृ-शक्ति

थे मेवाड़ में करते परचार स्वामी ।
थे मशहूर दौरां[१] सदाकत के हामी[२] ।।
जबां ज़द थीं हर सू सिफ़ाते गरामी[३] ।
था घर घर पड़ा गूंजता नामे स्वामी ।।
सरे शाम कुटिया में दरबार लगता ।
सलामी को हाज़िर हुआ करते राजा ।।
ऋषि कहते परताप का यह नगर है ।
शजा-अत[४] की बस्ती है जुर्रअत[५] का घर है ।।
बहादुर उदय सिंह का यह मकर[६] है ।
यहीं वीर सांगा का मदफ़ूं जिगर[७] है ।।
है यां चप्पे चप्पे में ख़ूं राजपूती ।
हुईं यां शहीदों की मायें सपूती ।।
यहीं लड़ के जानें रहे देते जैमल ।
यहीं सोय आल्हा यहीं सोय ऊदल ।।
गर्जते रहे सर पै गोलों के बादल ।
जबीं[८] पर न बीरों की हरगिज़ पड़ा बल ।।
लड़ाई में पहने बसन्ती हैं बाना ।
हो जूं साथ दुल्हा के शादी पै जाना ।।
कहीं सैर को साथ भगतों के निकले ।
खड़ा रह में मन्दिर था, पास उसके गुज़रे ।।
मचान एक था दिलकुशा गिर्द उसके[९] ।
किया सर को ख़म[१०] जब करीब उसके पहुंचे।।

कोई बोला स्वामी न तुम लाख मानो ।
करा लेते खुद देवता ख़म हैं सर को ॥
ऋषिवर[११] रुके राह में जाते जाते ।
वहीं चन्द लड़के खड़े खेलते थे ॥
बड़े सादा तीनत[१२] बड़े भोले भाले ।
थी बीच एक मासूम[१३] लड़की भी उनके ॥
यकायक[१४] ऋषिवर ने उंगली उठाई ।
कि देखो वोह मा है हमारी तुम्हारी ॥
जहां देख लो कोई देवी खड़ी है ।
समझ लो कि यह ताकते मादरी[१५] है ॥
झुको उसके आगे नजाबत[१६] यही है ।
पुकार उठे सब तू ग़ज़ब का जति है ॥
है नज़रों में मा जिसकी मासूम बाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. उस काल में प्रसिद्ध, २. सत्य के पोषक, ३. सब की वाणी पर ऋषि का गुणगान था, ४. वीरता, ५. साहस, ६. विश्राम-स्थलि, ७. भावनायें यहीं दबी पड़ी हैं, ८. माथे पर, ९. उसके चारों ओर एक भव्य मचान था, १०. झुकाया, ११. मूल में महर्षि है । कविता में ऋषिवर कहीं अधिक उपयुक्त लगता है । यत्र तत्र हम ने ऋषिवर ही कर दिया है, १२. सरल प्रकृति के-भोले, १३. निष्पाप, १४. अविलम्ब, १५. मातृशक्ति, १६. सौजन्य, शिष्टता ।

* * *

१८८३ ई०　　　　　　　　　　　　　　उदयपुर

२६. करोड़ की गद्दी

ऋषि का उदयपुर में बजता था डंका ।
ब नफ़से नफ़ीस[१] आते डेरे पै राजा ॥
हुआ मोतकिद[२] शहर का शहर सारा ।
सबक राज का था महाराजा पढ़ता ॥
ऋषि उसको गुर सल्तन्त[३] के सिखाते ।
रियासत के थे अच्छे दिन आते जाते ॥
सुधरने लगी सब रिआया[४] भी उनकी ।
कि परजा तो राजा का है अक्स[५] होती ॥
लगी राज की होने इसलाह[६] जल्दी ।
दिनों में हकूमत की कल फिर गई थी ॥
न मातहतो अफ़सर[७] में झगड़ा रहा कुछ ।
न महकूमो हाकिम में रगड़ा रहा कुछ[८] ॥
हुए हाज़िर इकरोज ख़िलवत[९] में राजा ।
कहा अर्ज़ करता हूं इक बे मुहाबा[१०] ॥
है मन्दिर मिरे राज के साथ लगता ।
है जागीर पर उसकी लाखों का परता[११] ॥
बुतों की अगर छोड़ दो हिजव[१२] दण्डी ।
तो हाज़िर है चरणों में मन्दिर की गद्दी ॥
ऋषि ग़ैज[१३] में आय यह अर्ज़ सुनकर ।
कहा गद्दी कितनी है नाज़ां[१४] हो जिस पर ।
तिरे राज की भी तो हद है मुकरर[१५] ।
जो मैं चाहूं इक दौड़ में जाऊं बाहर ॥

है बे इन्तहा राज साईं का मेरे[१६] ।
तिरी जब मैं मानूं कि भाग आऊं उससे ॥
सुनी जब यह तकरीर दण्डी गुरु की ।
हुई किरकरी कल्ग़ी वाले की शेख़ी[१७] ॥
गिरा पाओं में और मांगी मु-आफ़ी ।
कहा थी परख हमको करनी सो कर ली ॥
तिरी ख़ाके पा सीमो ज़र से है आला[१८] ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. स्वयं, २. विश्वासी, अनुचर, ३. राजधर्म सिखाते, ४. प्रजा, ५. प्रतिबिम्ब, ६. सुधार, ७. वरिष्ठ कनिष्ठ कर्मचारी का विवाद मिट गया, ८. राजा प्रजा का भी कोई रगड़ा झगड़ा न रहा, ९. एकान्त, १०. नि:संकोच, ११. भू रजस्व, १२. मूर्ति-पूजा खण्डन, १३. आवेश में, १४. इतरा रहे हो, १५. सीमा नियत है, १६. प्रभु की राज्य की कहीं कोई सीमा नहीं है, १७. मुकट वाले राजा का अभिमान टूट गया, १८. तेरी चरणधूलि सोने व चांदी से भी कहीं बढ़कर है ।

२७. यूं ही बुतपरस्ती की है नींव पड़ती

लगे जोधपुर को जो जाने ऋषि जी ।
किसी ने कहा सोचकर होना राही ॥
भिड़ों का है छत्ता, जहूलों[१] की नगरी ।
पड़ा है निरा फ़ित्ना[२] घुट्टी में उनकी ॥
कहा—यां ग़म अहले खिरद[३] का नहीं है ।
मिरा दिल जहूलों के ग़म में हज़ीं है[४] ॥
तड़पते हैं हम ता कुछ उनको सिखायें ।
जो हैवां हैं हम उनको इन्सां बनायें ॥
जो बत्ती बनाकर वोह हम को जलायें ।
मिरी उंगलियां काट कर नूर पायें ॥
उजाला हो कुछ इस शरारत से उनकी ।
मिरा दिल जला पाय राहत से उनकी[५] ॥

❊ ❊ ❊

१८८३ ई०

किसी मोतकिद[६] ने कहा इक दिन उन से ।
ऋषि ! तुम हो महबूब[७] सारे जहां के ॥
बहुत ख़ाके पा पर तुम्हारी हैं सदके[८] ।
बहुत प्यास में दर्शनों की हैं मरते ॥
जो अहसां ज़माने पै तुमने किया है ।
इवज़ उसका जो दे ज़माना बजा है[९] ॥
नहीं ऐसे इन्सां सदा जन्म लेते ।
नहीं दर्शन ऐसे पुरुष रोज़ देते ॥
नहीं नाखुदा[१०] रोज़ यह किशती खेते ।
नहीं अण्डा सोने का नित पंछी सेते ॥

बुत एक अपना हम को बनाने दो भगवन् ।
हदायत मिले और को, हम को दर्शन ॥
कहा देखना बात करना न ऐसी ।
यूं ही बुत परस्ती की है नींव पड़ती ॥
मिले जिससे मट्टी में तालीम हक की[११] ।
हुई याद क्या ? वोह है तोहीन मेरी[१२] ॥
मेरी राख तक का न बाकी निशां हो ।
मैं खुश हूं करें खाद खेती का उसको ॥
सुनी मोतकिद[१३] ने जो तकरीरे स्वामी ।
कहा, दिल को भाई यह तदबीरे स्वामी ॥
पड़ेंगे जो वेदों पै तफ़सीरे स्वामी ।
फिरेगी उन आंखों में तस्वीरे स्वामी ॥
है मर कर भी जीतों के काम आने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ॥

---

१. अत्यन्त अज्ञानी, वज्र मूर्ख लोग, २. उन को जन्म घुट्टी ही शरारत की दी जाती है, ३. बुद्धिमानों की मुझे चिन्ता नहीं है, ४. शोकाकुल, ५. उनकी शरारत से मेरा हृदय प्रज्वलित होकर उजाला कर दे, ६. अनुयायी, ७. विश्व के प्यारे हो, ८. अनेक लोग आप की चरण धूलि पर वारी बलिहारी हैं, ९. संसार आपके उपकारों के बदले में जो कुछ भी दे उचित ही है, १०. खवनहार, ११. सत्योपदेश धूलि में जिस से में मिल जाय, १२. मेरा अपमान है, १३. भक्त ने, शिष्य ने ।

***

१८८३ ई० जोधपुर

२८. कहा गोद में शेर की बैठे कुतिया

महाराजा दर्शन को स्वामी के आते। बड़े इजज़[१] से पाँव पर सिर झुकाते॥
तभी बैठते जब ऋषि जी बिठाते। मनु का वचन उनको स्वामी सुनाते॥
कहा जोड़ कर हाथ राजा ने इक दिन।
दया कीजे बन्दों पै बन्दों के मुहसन[२]॥
कभी राजमहलों में तशरीफ़ लाओ। ग़रीबों के डेरे की रौनक बढ़ाओ॥
प्यास अहले दरबार को है बुझाओ। कभी घर पै प्यासों को अमृत चखाओ॥
न रखो ग़ना खातिरे मुत्मैन[३] में।
बिछी हैं यह आँखें समा जाओ इन में॥
गये दूसरे दिन जो दरबार दण्डी। ख़बर दी न राजा को आमद[४] की अपनी॥
महाराजा की नन्ही जाँ थी चहेती। यह पहुंचे तो थी उठ रही उसकी डोली॥
ऋषिवर की झट ख़ून आँखों में उतरा।
कहा गोद में शेर की बैठे कुतिया?
गये डूब सकते[५] में दरबार वाले। बने नक्शे दीवार[६] हैरां खड़े थे॥
निगाह शर्म से बादशाह की थी नीचे। इशारों में दीवारो दर[७] थे यह कहते॥
तिरे रोब ने रौंद राजों को डाला।
दयानन्द स्वामी! तिरा बोल बाला॥

---

१. विनम्रता, २. हितैषी, संरक्षक, ३. शान्त मन की तटस्थता, उदासीनता, ४. आगमन, ५. चकित होना, अचेत सा होना, ६. दीवार पर बने चित्र, ७. दीवार व द्वार।

* * *

२९. अमृत का प्याला

झिड़क क्या मिली जो गये नुक्ता दाँ[१] से ।
उठा दिल महाराज का नन्ही जाँ से ॥
यह नन्ही पै अज़हर[२] था रोज़े अयाँ[३] से ।
कि पंछी गया भाग राहे कमाँ से ॥
महाराजा को आई असियाँ[४] से नफ़रत ।
परेशाँ हुई नन्ही जाँ की तबीयत ॥
किनारा किया शाहे अफ़सूं नज़र ने[५] ।
कलेजे में ग़म के लगे तीर उतरने ॥
लगी शाहे दिलजूं[६] की फुरकत[७] में मरने ।
लगी साज़बाज़ अहले दौलत से करने ॥
थे साज़िश में शामिल वोह सब अहले दौलत ।
गई जिनसे थी छिन अनाने हकूमत[८] ॥
ब्रह्मण ऋषि का था भोजन बनाता ।
उसे देके रिशवत शरीरों ने गांठा ॥
ऋषि दूध पीकर जो खटिया में लेटा ।
हुआ पेट में यक बयक[९] दर्द पैदा ॥
यूं ही सोते सोते कई बार जागे ।
कि रह रह के थे पेट में पेच पड़ते ॥
थके जोग का ज़ोर सारा लगाकर ।
जो थी पेट में ज़हर आई न बाहर ॥
जगाया ब्रह्मण को आवाज़ देकर ।
कि सच्च कहियो दूध आज क्यों था मकद्दर[१०]॥

वोह करता रहा साफ़ इनकार पहले ।
निगाह ने ठिकाने किये होश उसके ।।
ऋषि के लगा कहने पाँव पै गिरकर ।
कि साईं जगन्नाथ ने खाई ठोकर ।।
किसी अहले दौलत के चकमे[११] में आकर ।
प्याले में दी दूध के ज़हर हल कर ।।
है सूली पै खिंचना ही किस्मत में मेरी ।
नहीं मेरा परलोक में आह ! कोई ।।
मुआफ़ आप कर दें तो शादाँ मरूंगा[१२] ।
न दोज़ख़ की ज़हमत से हरगिज़ डरूंगा ।।
खुशी से तैयारी अजल[१४] की करूंगा ।
कदम हल्का राहे अदम[१५] में धरूंगा ।।
कहा तू ने हमको बताया है सच्च सच्च ।
यह ले ज़ादे राह[१६], भाग और मौत से बच ।।
मुझे ज़हर अपने लिये अंगबीं[१७] है ।
मगर ग़म में भारत के खातिर हज़ीं[१८] है ।।
कहा मिल के तारों ने हाँ हाँ यकीं है ।
दयावान तुझ सा ज़मीं पर नहीं है ।।
जो दे ज़हर के मोल अमृत का प्याला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बाला ।।

---

१. गुणी, विद्वान्, २. प्रकट ही था, ३. चमकते दिन के समान, ४. पाप, ५. जिसकी आंखों में जादू था, प्रेमिका, ६. प्रेमी, ७. जुदाई, ८. राज्य की बागडोर, ९. एकदम, १०. मैला, मिलावट वाला, ११. चक्कर में, १२. चैन से मरूंगा, १३. नरक के कष्ट, १४. मौत, १५. परलोक, १६. मार्ग में काम आने की सामग्री, १७. मधु, १८. चिन्तित ।

* * *

१८८३ ई०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　अजमेर

३०. अमर जोत

लगे मेरे स्वामी को छाले सताने ।
लगे बीसियों दस्त उन्हें ज़ोर आने ।।
किया ज़हर का काम उलटा दवा ने ।
न आई तबीअत, न आई ठिकाने ।।

ऋषिवर की किस्मत के थे फेर उलटे ।
मुआलज[१] थे हमराज़[२] सब नन्ही जाँ के ।।

रहे दस्त पर दस्त हर रोज़ जारी ।
लगी होने बेहोशी रह रह के तारी[३] ।।
हरारत[४] से बढ़ती गई बेकरारी ।
ऋषि को हुई लागू शामत हमारी[५] ।।

फफोले उठे नाफ़[६] से थे ज़बाँ तक ।
ज़िगर से यही सोज़[७] पहुंचा था जाँ तक ।।

वोह स्वामी जो हाथी की ताकत था रखता ।
उठी तेग़[८] को हाथ से टुकड़े करता ।।
था बेख़ौफ़ राजों के सिर पर गर्जता ।
था लाचार खटिया पै आज आह ! लेटा ।।

तड़पते कटीं दर्द से सत्रह रातें ।
न आराम आया ज़रा जोधपुर में ।।

लगे कहने स्वामी चलो कोह आबू ।
नहीं चैन आने का याँ कोई पहलू ।।
हवा में है होता पहाड़ों की जादू ।
कहीं रोग का मेरे शायद हो दारू ।।

लगे राजा रोने "कटी नाक मेरी ।
ऋषि जी गये राज से मेरे रोगी" ॥
ऋषि को सुलाया गया पालकी में ।
था डूबा खड़ा राजा शर्मिन्दगी में ॥
न रखा दकीका[९] उठा बन्दगी में ।
कहा पाओं पर गिर के अरमां है जी में ॥
जो सेहत में करता ऋषिवर को रुख़सत ।
न यूं पाओं पड़ने में होती नदामत[१०] ॥
किसी डाक्टर ने जो स्वामी को देखा ।
कहा तेरा साधु जिगर है ग़ज़ब का ॥
तू इस दर्द में है ज़मीयत[११] से जीता ।
नहीं उफ़ ज़बाँ से तिरी कोई सुनता ॥
गये कोह आबू से अजमेर स्वामी ।
इशारों में करते थे शीरीं कलामी[१२] ॥
कहा एक दिन कोई नाई बुलाओ ।
हमें आज पानी से मिलकर नहाओ ॥
जो खाना कि हो सबसे शीरीं पकाओ ।
हलावत[१३] का इक ख़ांनचा भरके लाओ ॥
थे सब शुक्र करते, है हाल आज अच्छा ।
खबर क्या ? संभाला[१४] था बीमार लेता ॥
नहा कर जमाया ऋषिवर ने आसन ।
हुए ध्यान में महव खुलवा के रोज़न[१५] ॥
सुरें वेद की मीठी मीठी नवाज़न[१६] ।
पकड़ती थीं अनवारे रहमत[१७] का दामन ॥
रज़ा[१८] पर कहा तेरी साईं ! हूं राज़ी ।
वोह लो ! आत्मा सांस के साथ चल दी ॥
ऋषि चैन से आख़री नींद सोया ।
था चेहरे पै नूर अब भी उसके चमकता ॥

गुरुदत्त कि रखते थे ईमान बोदा[१९] ।
समाँ देखकर उन पै छाया अचम्भा ॥
कहा मर के भी तुम नहीं स्वामी मरते ।
हैं मुर्दार हम जैसे मरने से डरते ॥
ज़मीं आई कहती यह मिट्टी है मेरी ।
ख़ला में ख़ला, बाद में बाद[२०] पहुंची ॥
यह कहती हुई आग वेदी से उठी ।
हमारा महर्षि ! हमारा महर्षि ॥
किया मौत ने तेरी हर सू[२१] उजाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ॥

---

१. डाक्टर, २. विश्वासपात्र अथवा साथी, वेश्या का नाम नन्ही भगतन था । उर्दू के प्रभाव में 'नन्ही जान' लिखा जाता रहा है । उर्दू में वेश्या के नाम के साथ 'जान' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।, ३. छाई, ४. ताप, ५. हमारा दुर्भाग्य कि ऋषि की यह अवस्था हुई, ६. नाभि, ७. जलन, ८. तलवार, ९. कमी, १०. लज्जा, ११. शान्ति, १२. मधुर वार्ता, १३. मीठी वस्तु, १४. देह-त्याग से पूर्व रोगी के सचेत होने को संभाला कहते हैं । १५. खिड़कियां रोशनदान खुलवाकर ध्यान में लीन हो गये, १६. ऋचाओं का मधुर गान, १७. सूर्य की रश्मियाँ भीतर प्रविष्ट हुईं, १८. प्रभु की इच्छा, १९. थोथा, ढुलमुल, २०. आकाश में आकाश, वायु में वायु मिल गई । २१. दशों दिशाओं में ।

***

परिशिष्ट

ऋषि के चरणों में

आंख नूरानी हुई देख के सूर्त तेरी ।
दिल तवाना[१] हुआ याद आई जो सीरत[२] तेरी ।।

शुक्र ! सद शुक्र !! मिटी ख़ाना बदोशी दिल की[३] ।
कर गई सीने में जब से महब्बत तेरी ।।
बाल बाल उनका है बरकत में हुमा से बर तर[४] ।
लेते सिर पर हैं जो एक एक हदायत तेरी ।।
ज़हर के बदले दिया चश्माय हैवां[५] तू ने ।
कर गई ज़िन्दा हमें शाने शहादत तेरी ।।
दोस्त दुश्मन तिरी हक गोई से खुद बीं न रहे ।
रूकशे आईना थी साफ़ सदाकत तेरी[६] ।।
कभी आचार्य कहा तुझको कभी योगेशर ।
सच्च तो यह है न खुली हम पै हकीकत तेरी ।।
वेद के इल्म ने दी तुझ को फ़ज़ीलत[७] क्या क्या ।
हाफ़िज़ वेद हुई जब से फ़ज़ीलत[८] तेरी ।।
हके शागिर्दी अदा तू ने किया आलम में ।
हुई उस्तादे ज़मां सच्ची स-आदत[९] तेरी ।।

सिर के बल जाय जो कदमों में ऋषि के 'सादिक' ।
कुछ तो हम जानें ऋषि से है अकीदत तेरी ।।

---

१. सशक्त, २. चरित्र, गुण, स्वभाव, ३. ईश्वर का सौ-सौ बार धन्यवाद कि ऋषि के जीवन व साहित्य के अध्ययन से यहां वहां भटक रहे मेरे मन का

भटकना (nomadic Life) समाप्त हो गई । मन एकाग्र व शान्त हो गया ।, ४. फ़ारसी कवियों की कल्पना का एक पक्षी है जिसे हुमा कहते हैं । यह इतना शुभ है कि इसकी छाया पाकर व्यक्ति सम्राट् बन जाता है । ऋषि की शिक्षा उस पक्षी से भी कहीं श्रेष्ठतर है ।, ५. अमृत पिलाया, ६. तेरी स्पष्टवादिता से शत्रु भी अभिमानी न रहे । दर्पण के समान तेरे कथन में उनको अपना सब कुछ दिखाई देने लगा ।, ७. महानता, ८. तेरा बड़प्पन इसी में है कि तू वेदोद्धारक था, वेद-रक्षक था ।, ९. तेरा सौभाग्य विश्व-गुरु बन गया ।

प्यारे की तस्वीर

टुकड़ा इक काग़ज का है या रंग की पुड़िया है तू ?
हां ! चमक भी तुझ में है, रोग़न[१] की इक डिबिया है तू ।।
पुश्त छू देखी है, वां इक खुर्दरा कपड़ा है तू ।
इस कदर प्यारी जो फिर लगती है, सच्च कह क्या है तू ।।
दिल नहीं तुझ में दिल आराई की पर तासीर है[२] ।
हां ! नहीं प्यारा, मगर प्यारे की तू तस्वीर है ।।
वोह सिरे पुर मग़ज़ तेरा बीच में उठा हुआ[३] !
हो सरे मू जिसका ज़ाकर[४] तेरे ज़िक्रो फ़िक्र का ।।
चौड़ी पेशानी सरासर मतलाय ज़हनो ज़का[५] ।
रोशन आंखों में सरूरे सर्मदी की है ज़िया[६] ।।
फूल से हैं गाल, दिखलाते तजर्रद[७] की बहार ।
छू नहीं सकता इन्हें झोंका ख़िज़ां का ज़ीन्हार[८] ।।
सीनाय साफ़ी की वोह वसु-अत के दो आलम हैं तंग[९] ।
देखकर बाज़ू की ताकत पहलवां दुनिया के दंग ।।
कौम की इस्लाह[१०] हो जिससे वोह छाती में उमंग ।
तब-अ नूरानी को ज़ेबा है तिरा नूरानी रंग ।।
वेद की तानों से ठहरा चश्माय हेवां गलू[१२] ।
इस लबे मुइजज़ नमा से टपका अमृत चार सू[१३] ।।
सख़्त तर फ़ौलाद से हैं सब बदन की हड्डियां ।
जिस्म की ताकत के पर्दे में निहां दिल की तवाँ[१४] ।।
रुकन हैं किसरे बदन की सख़्त रानें बेगुमां[१५] ।
योग के आसन को शायां हैं यह चौड़ी पिण्डलियां ।।

क्या तने उरियां पै तेरे कर सकें बद ख़्वाह चोट ।
लाख जोशन से कड़ा है इक तजर्रद का लंगोट[१६] ॥
चाहता है जी तिरे कदमों में दें सिर को झुका ।
और न हो रुसवाय अदब,[१७] तो लें गले से भी लगा ॥
तुझ को आंखों पर रखें, दें अश्क की लड़ियां पहना ।
फूल से बढ़कर है बू, मोती में कमतर[१८] ज़िया ॥
बुतपरस्ती का न होता डर तो तुझ को पूजते ।
हम दयानन्द आज होते, भगत अगर होते तिरे ॥

---

१. लौ भी है और घृत, तैल भी है, २. हृदयों को खींचने की भरपूर शक्ति है, ३. ऋषि का बीच में उभरा हुआ सिर, उपासना की भक्ति की निशानी है, ४. वर्णन करने वाला, ५. उर्वरामस्तिष्क, प्रखर बुद्धि का सूचक चौड़ा माथा, ६. नयनों के तेज से योगसाधना, भक्ति की मस्ती का पता चलता है, ७. संयम, ८. जिसका ह्रास कदापि सम्भव नहीं, ९. तेरे निर्मल हृदय की विशालता की तुलना में ये लोक तंग लगते हैं, १०. सुधार, ११. तेरे मुखड़े का तेज तेरे स्वभाव की तेजस्विता को शोभा देता है, १२. वेद की मधुर तानों के कारण तेरा कण्ठ अमृत का स्रोत बन गया, १३. तेरे चमत्कारी अधरों ने सब ओर सत्यामृत प्रवाहित किया, १४. तेरे सुकठोर शरीर का कारण तेरे हृदय की पवित्रता-ब्रह्मचर्य पालन इसका रहस्य है, १५. तेरी जंघायें शरीर रूपी प्रासाद के स्तम्भ हैं, १७. अशिष्टता न लगे, निरादर न हो तो, १८. पुष्प में इतनी सुगन्धि नहीं और रत्न मोतियों में इतना तेज नहीं ।

* * *

तलाशे हक[१]

ऐ तलाशे हक ! कहां है तेरा पाकीज़ा[२] मुकाम ?
किस ज़बाने पाक से लेते हैं तेरा पाक नाम ?
जलवागर[३] क्या अर्श[४] पर है तेरा मल्कूती नज़ाम[५] ।
ऐ सफ़ा केशों की देवी[६] ! क्या तुझे झूटों से काम ।।
जा बजा यां जाल हैं तज़वीर[७] के फैले हुए ।
बन्द कट जाते हैं दर्शन से तिरे वाँ झूट के[८] ।।
कौन से मन्दिर में तेरी जलवागर है मूर्ति ।
किन दियों से हैं पुजारी तेरी करते आरती ।।
कैसा आवाहन है तेरा ? क्या है पूजा की विधि ?
देते सुबह शाम हैं क्या तुझको पण्डित आहुति ।।
चाह दर्शन की तिरे[८], ऐ देवी किन आंखों में है ।
चाशनी ज़िकरे निको की[९] तेरे, किन होंटों में है ।।
है कलीसा में व या, मस्जिद में है तेरा मकर ।
है मदीने में तिरी मनज़िल व या काशी में घर ।।
तेरा वोह बेलाग जलवा है मुझे मद्दे नज़र ।
साफ़ पाते हैं जिसे अहले बसीरत जलवागर[१०] ।।
लहन मोहन के गलो का[११], चश्मे गौतम की ज़िया[१२] ।
दूरबीं आंखों ने गैललियो की तुझ को पा लिया[१३] ।।
इस गये गुज़रे ज़माने में कि है कहते यकीं[१४] ।
उस्तवारी अहले आलम के अकीदों में नहीं[१४] ।।
दिल की कमज़ोरी हुई ग़ारतगरे दीने मतीं[१५] ।
सरसरे ओहाम से बोदे हुए सब किसरे दीं[१६] ।।

हो गया तेरा जनम फिर ख़िताय[१७] गुजरात में ।
बर्क थी दहकां को ढारस इस अंधेरी रात में[१८] ।।

जागना शिवरात्रि में इक ब्राह्मण तिफ़ल[१९] का ।
हक में अहले हिन्द के गोया हुआ शमे हुदा ।।
वसवसों ने शाम से ता सुबह रखी चश्मे वा ।
दिल की बेदारी में बारावर[२०] हुआ वोह रतजगा ।।

उठ रहे सीने में थे जो मूल शंकर के शरर[२१] ।
तेरी मशअल थी-अयाने तिफ़ल को थी क्या ख़बर[२२] ?

सूर्ते वसुदेव छाती से लगाय वोह तुझे ।
नन्द का घर ढूंढता था ता तुझे सौंपे उसे ।।
माँ से खटका था इधर तो था उधर डर बाप से ।
जाय हैरत थी सलामत किस तरह रखे तुझे ।।

पसत कर सकती न थी तू ज़ोर आदाय कवी[२३] ।
नाज़क अज़ा में तिरे थी आ रही ताकत अभी ।।

घर में जब देखा कि देवी की हिफ़ाज़त है महाल ।
रोज़ के झगड़ों से जीना हो गया अपना वबाल[२४] ।।
जब रही मां बाप से अपने न कुछ जाय सवाल[२५] ।
मार पड़ती गर ज़रा करता किसी से कीलो काल[२६] ।।

हो गया आमादाय गुर्बत वोह माँ का लाडला[२७] ।
थी उसे तेरी हिफ़ाज़त जानो ईमां से सिवा[२८] ।।

किन ब्याबानों[२९] से गुज़रा, किन पहाड़ों पर गया ।
वार जो तुझ पर हुआ वोह अपनी जां पर सह लिया ।।
बा अमा[३०] ख़ूंख़ार जबड़ों से दरिन्दों के रखा ।
हर कदम पर ख़ौफ़ उसे घर के तआ-कुब का रहा[३१] ।।

पत्ते-पत्ते में उसे जासूस आते थे नज़र ।
बाप ने भेजी थी इक पलटन पिसर[३२] की खोज पर ।।

सांप के सर पर कदम[३३] धरता कभी तेरे लिये ।
रीछ पर सोंटा अलम करता कभी तेरे लिये ।।

जीते जी दम मौत का भरता कभी तेरे लिये ।
ख़ौफ़ में जीता कभी मरता कभी तेरे लिये ॥
आड़ मिल जाती कभी उस को घने अशजार की[३४] ।
बरहना[३५] रहता खड़ा जाड़े की रातों में कभी ॥
आगे अहले इल्म के करता रहा गर्दन को ख़म[३६] ।
पर न भूले से कभी झुकने दिया तेरा अलम[३७] ॥
वहम की हस्ती मिटा दी तेग़े हक से यक कलम[३८] ।
दी तरक्की जस्तजूय इल्मे हक को दम बदम[३९] ॥
तजरबा नाशों पै करने से हुई उसको न आर[४०] ।
ना मुकमिल सा-ई छोड़े, था यह अज़बस नागवार[४१] ॥
दर्दे गुर्बत ने किया था ख़ातरे नाज़क अलीम[४२] ।
फुर्कते वालिद[४३] से था दिल मूलशंकर का दो नीम ॥
मौजाय उम्मीद इधर थी तो उधर थी सैले बीम[४४] ।
अबर से उफ़तादा कतरा था कि हो दुरे यतीम[४५] ॥
ढूंढती थी दीदाय वाय सद्फ़ नूरे नज़र[४६] ॥
तिशना लब को बहर में नायाब थी आबे गुहर[४७] ॥
फुर्कते वालिद का अब आसेब किस को याद था ।
बाप के साय से बढ़कर सायाय उस्ताद था ॥
हाँ दयानन्द आज विरजानन्द की औलाद था ।
मंज़िले मकसूद पर रहरो पहुंचकर शाद था ॥
हसबे दिलख़ाह एक मन्दिर अब उसे आया नज़र ।
दिल से देवी को निकाला, कर दिया वाँ जलवागर ॥
अब तलक तेरा तलाशे हक था पाकीज़ा लकब[४८] ।
सरस्ती और लक्ष्मी से था मु-अज़ज़ तर नसब[४९] ॥
थी तज्जली गो तिरी जुल्मत रुबाय रूये शब[५०] ।
आ गई परकाश में कहलाई तू सत्यार्थ अब[५१] ॥
सूरते खुर्शीद तेरा नूर फैला हर तरफ़ ।
रोशनी से हो गए लबरेज़ सब लालो खज़फ़[५२] ॥

तेरे दर्शन से हुआ याँ ख़ल्क का दिल बाग बाग़[५३] ।
दीपमाला के हुए वाँ चार सू रोशन चराग़[५४] ॥
नूरे हक का मिल गया तेरी तज्जली से सुराग़[५५] ।
हसरते पाबोस का तेरी मिटा सीनों से दाग़[५६] ॥
आतमा तब शान्त इस कामिल ऋषिवर की हुई[५७] ।
माहव गोया रोशनी में हो गई फिर रोशनी[५८] ॥
आज फिर किस्मत से 'सादिक' है वही शिवरात्रि ।
ज़लवागर जिसमें हुई पाकीज़ा देवी सिदक[५९] की ॥
है वही अच्छी महूर्त, है वही अच्छी घड़ी ।
मांग ले तू भी जो हो कुछ दिल में ज़ौके रोशनी[६०] ॥
सायल ऐ देवी ! तेरी तन्वीर का 'सादिक' भी है[६१]।
मनज़िले तारीक करनी है उसे दुनिया की तय[६२] ॥

---

१. जिज्ञासा, सत्य की खोज, २. पवित्र स्थान, ३. प्रकाशमान्, प्रकट, ४. आकाश-आसमान, ५. फ़रिशतों की व्यवस्था, ६. हृदय की निर्मलता को अपना धर्म मानने वाले, ७. सर्वत्र छल कपट का जाल फैला है, ८. जहां तू है, वहां तेरे दर्शन से झूठ के बन्धन कट जाते हैं, ९. शुभ नाम के वर्णन की मिठास, १०. नयनों वाले जिसे सुस्पष्ट देखते हैं, ११. कृष्ण की गीता की सुरीली धुन, १२. चमक, १३. सत्यान्वेषी गलेलियों के नयनों ने तेरा दर्शन पा लिया, १४. इस युग में विश्वास का सर्वत्र दुष्काल है । सांसारिक लोगों के विश्वास में दृढ़ता नहीं, १५. हृदय की दुर्बलता से विश्वास की नींव खोखली हो गई है ।, १६. अन्धविश्वास की आंधी से धर्म की नींव कच्ची कर दी है ।, १७. क्षेत्र में, १८. बिजली की चमक से भी किसान को अंधेरी रात में सान्त्वना मिलती है, १९. बालक के जगने से उपदेश की ज्योति मिल गई, २०. फल ले आया, २१. चिन्गारियां, २२. वह तेरी ही ज्योति थी अंजान बालक को क्या पता था ?, २३.बलवान शत्रुओं की शक्ति नीचा न कर सकती थी ।, २४. कठिन, २५. कुछ पूछ न सकते थे, २६. वार्तालाप, २७. माँ का प्यारा परदेस को चलने लगा, २८. तेरी रक्षा जी जान से भी बढ़कर प्यारी थी, २९. जंगलों, ३०. सुरक्षित, ३१. पीछा करने का भय, ३२. पुत्र, ३३. मैडम ब्लैवटस्की ने एक संस्मरण लिखा है कि शत्रुओं ने ऋषि के पांव पर एक सर्प फेंका था, ३४. बनों में भटकते हुए कई बार घने वृक्षों की

छाया में रातें बिताईं, ३५ नंगे रहे, ३६. शीश नवाकर विद्वानों से सीखते रहे, ३७ ऐ सत्य की खोज ! तेरा झण्डा ऋषि ने कभी झुकने न दिया, ३८. सत्य की तर्करूपी तलवार से अन्धविश्वास की एक ही वार से सत्ता ही मिटा दी, ३९. प्रतिपल सद्ज्ञान की खोज को समुन्नत किया, ४०. शव परीक्षण में भी संकोच न किया, ४१. प्रयास को अधूरा छोड़ना असह्य था, ४२. चिन्तित-दुःखी, ४३. पिता की विरह, ४४. सफलता की आशा के साथ-साथ हृदय को विफलता का भी भय था, ४५. सीप में पड़ने वाली वर्षा की बूंद जो मोती बन जाती है ।, ४६. सीप मुख खोलकर वर्षा की बूंद को ताकती है ऐसे ही गुरु विरजानन्द नयनों की ज्योति बनने वाले शिष्य को देख रहे थे, ४७. मथुरा में रहते हुए विरजानन्द जी जल में प्यासी मीन के समान कोई योग्य शिष्य न पा सके ।, ४८. अब तक तो सत्य की खोज (जिज्ञासा) तेरा पवित्र नाम पड़ गया था, ४९. श्रेष्ठ कुल, ५०. तेरा प्रकाश, तेरी ज्योति रात के अन्धकार को भगाने वाली थी, ५१. प्रकाश में आकर तू सत्यार्थप्रकाश कहलाई। सत्यार्थप्रकाश वह मन्दिर है जिसमें जिज्ञासा की देवी को प्रतिष्ठित करके प्रकाश में लाया गया, ५२. तेरी ज्योति से सब पत्थर व ठीकरयाँ प्रकाश से भर गये, ५३. यहां जन जन गद्‌गद हो गये, ५४. और वहां सब ओर दीपमाला से उजाला हो गया, ५५. सद्ज्ञान ज्योति का तेरे प्रकाश से अता पता चल गया, ५६. तेरी चरण चाटने चूमने वाली तड़पती चाह का सीनों से दाग़ मिट गया, ५७. ऋषिवर ने दीपमाला की रात देह का त्याग किया, ५८. इस प्रकार प्रकाश में प्रकाश विलीन हो गया, ५९. शिवरात्रि की रात्रि को टंकारा में सच्चाई की पवित्र देवी प्रकट हुई थी ।, ६०. ऐ 'सादिक' आज ऋषिबोध पर्व पर तू भी शिवरात्रि से कुछ मांग ले । हृदय में ज्योति की चाह है तो मांग ! मांग !! मत चूक मांग !!!, ६१. ऐ सत्य की खोज-जिज्ञासा की देवी ! सादिक भी तेरी ज्योति को पाने के लिए सवाली (भिक्षुक) बनकर खड़ा है ।, ६२. संसार की अन्धेरी राहों को उसे पार करना है ।

शिवरात्रि

'सादिक' उठ आज शिव के रिझाने की रात है ।
रुठे हुए को फिर से मनाने की रात है ॥
सो कर कहां यह मुफ़्त गंवाने की रात है ।
पत्थर से दिल को मोम बनाने की रात है ॥
उठ भूक प्यास झेल-तू चरणों में शिव के जा ।
दर्शन से शिव के दिल की सभी इशत्हा[१] मिटा ॥
पर्दे में तीरगी के है वोह नूर आशकार[२] ।
इस तीरगी पै हो गई खुद चांदनी निसार[३] ॥
सदके अन्धेरी रात के खुर्शीद नूर बार[४] ।
आंखों पै कुछ अयां नहीं जुज़ ज़ाते किरदगार[५] ॥
दिखलाय तीरगी ने वोह अनवारे दिल निशीं[६] ।
अब मासिवाय यार[७] कुछ आता नज़र नहीं ॥
हैरत फ़ज़ा[८] हैं शम्भु ! तेरी यह तज्जलियां ।
अनवार में निहां है तू ज़ुल्मत में है अयां[९] ॥
ढूंढा कहां था तुझ को मगर पा लिया कहां ?
क्या इल्म था धुंधलके में है चांदनी निहां ॥
योगी न तुझ को देख सके, आँख खोल कर ।
झपकाई जब पलक तो वहीं आ गया नज़र ॥
इस तीरा शब[१०] को तू ने बनाया इसी लिए ।
ता मोहिनी छबि[११] तिरी जी भर के देखिये ॥
बदख़ाह से हो ख़ौफ़ न खटका रकीब से[१२] ।
ख़िलवत में वसल याब हों दिलदादे वसल[१३] के ॥

रहरो को ता लगे न नज़र आफ़ताब की[१४] ।
होती है दिन को रहज़निये राहे हक जभी[१५] ॥
शिव जी वोह घूंट दो कि रहूं मस्ते बेखुदी ।
आंखें खुली हों तो भी यह मस्ती रहे चढ़ी ॥
घुट्टी वोह दो कि जिससे थे सरशार मूल जी ।
पीकर जिसे थी चश्मे हकीकत निगर खुली[१८] ॥
बेदारियों को मात किया चश्मे मस्त ने[१९] ।
होशयार सब को कर दिया मस्ते उलस्त ने[२०] ॥

---

१. भूख, २. अन्धेरे के पर्दे में ज्योति प्रकट है, ३. इस अन्धेरे पर तो स्वयं चांदनी भी बलिहारी है, ४. अन्धेरी रात को प्रकाश बखेरने वाली रात पर सूर्य भी वारी, ५. आंखों को ईश्वर की सत्ता के सिवा कुछ भी तो नहीं दीखता, ६. दिल में घर करने वाली ज्योति, ७. मित्र के अतिरिक्त, ८. आश्चर्य को बढ़ाने वाली, ९. तू अन्धेरे में (आंखें बन्द करके) प्रकट होता है और प्रकाश में हे प्रभु तो छुपा रहता है ।, १०. अन्धेरी रात, ११. मोहिनी छवि, १२. न बुरा चाहने वाले से भय हो और न ईर्ष्यालु से खटका हो, १३. मिलाप चाहने वाले एकान्त में मिल पाते हैं, १४. पथिक को सूर्य की नज़र न लग जाये, १५. दिन को मन एकाग्र नहीं होता, भटकता है । दिन को इस मार्ग में चोर पड़ते हैं ।, १६. पौराणिक तो शिव जी की बूटी भंग बताते हैं । यहां भक्ति की मस्ती है ।, १७. मूलशंकर जिस घुट्टी को पाकर मस्त थे, १८. सत्य को देखने वाली आंख जो पत्थर को पत्थर और ईश्वर को ईश्वर समझ सके ।, १९. जागृतियों को मस्त नयनों ने मात दे दी, २०. परमात्मा के दीवाने ने जिसे उस की पूरी लौ लग गई थी ।

* * *

पहेली

सूरज ने सरे शाम जो ली राह सफ़र की ।
ली चांद ने ऐ आह ! ख़बर आ के न घर[1] की ।।
तारों से तलाफ़ी थी कहां होनी कमर की[2] ।
बच्चों से संभाली न गई कुर्सी पिदर[3] की ।।

अन्धेर था घर में कि बड़ा कोई नहीं था ।
घर ख़ाक में मिल जायेगा यह सब को यकीं था ।।

था पर्दा पड़ा ऐसा ख़लायक की नज़र पर ।
देख आँख न सकती थी जो हो सामने पत्थर[4] ।।
बे खटके खुले फिरते थे सब रहज़नो शप्पर[5] ।
था शीशाय दिल वहम की मट्टी से मुकद्दर[6] ।।

आंखों को तो धोका था कि हैं पूजते शिव शिव !
और दिल का था यह हाल कि शिव भी करे शिव ! शिव[7] !

वोह कैफ़ियत[8] इस रात की शिव देख रहा है !
हैरत में है क्या इन की अकीदत[9] को हुआ है ।।
कुछ बोलता कहता नहीं क्या रूठ गया है ?
सोते हैं पुजारी यह सबब है ? कि ख़फ़ा[10] है ।।

जय मूश[11] ! सुना है तू है गणपत की सवारी ।
गर शिव को मनावे, तिरा अहसान हो भारी ।।

लो दीदनी है मूश की बेबाक दलेरी[12] ।
डण्डवत् न प्रणाम, न परिक्रमा न फेरी ।।
गुस्ताख़ है गुस्ताख़ी में करता नहीं दलेरी ।
आसन पै चढ़ा फिर भी नहीं शोख़ को सेरी[13] ।।

हैं ! भेंट को शिवजी की है झूठा किये देता ।
है ख़ाक भरे पांव से शिवलिङ्ग पै चढ़ता ॥
यह आलमे बेदारी है या आलमे रोया[१४] ।
ऐ दिल ! यह हकीकत है कि धोका है सरापा[१५] ॥
सच्च कहना खुली है कि मुन्दी दीदाय बीना[१६] !
इस देखने पर मुझ को यकीं तो नहीं आता ॥
ऐ रत जगे वालो ! कोई होशयार नहीं है ?
हैं जागते पर वोह दिले बेदार नहीं है ॥
चूहे के बराबर भी इन्हें होश अगर हो ।
पत्थर के लिए कौम न यूं ख़ाक बसर हो ॥
आंखों में अगर पुतली हो, पुतली में नज़र हो ।
सीने में अगर दिल हो तो साफ़ उसको ख़बर हो ॥
हैरां हूं समझ में नहीं आती यह पहेली ।
गणपत की सवारी है चढ़ी पीठ पै शिव की[१७] ॥
ऐ मख़ज़ने अनवार[१८] ! तू दरवाज़ा ज़रा खोल ।
सब देवों के सरदार ! तू दरवाज़ा ज़रा खोल ॥
शम्भु मिरे दिलदार[१९] ! तू दरवाज़ा ज़रा खोल ।
हैं तालिबे दीदार[२०] तू दरवाज़ा ज़रा खोल ॥
पत्थर में नज़र ही नहीं आती तिरी सूरत ।
आ दिल में मिरे—चाहिए गर गोशाय ख़िलवत ॥
क्यों आम ज़्यारत[२१] की इज़ाज़त नहीं मिलती ।
क्यों सबको बराबर यह स-आदत[२२] नहीं मिलती ॥
सब प्यासे हैं जिसके वोह हलावत[२३] नहीं मिलती ।
सब जिसको तरसते हैं वोह लज़्ज़त नहीं मिलती ॥
हां ! कैद त-ऐय्युन[२४] की मिटा दे मिरे प्यारे !
वुस-अत[२५] की लगन दिल को लगा दे मिरे प्यारे !!
जलवा तिरा हर रूप में हर रंग में देखूं ।
शीशे में तुझे देखूं तुझे संग में देखूं ॥

जो चाहे सर से यह कर्ज़ उतरे,
तो आम आलम में वेद कर दे[२१] ।
भरी है झोली तिरी किसी ने,
तू जा ज़माने की झोली भर दे ।।

---

१. सन्मार्ग से, २. असत्य को स्वीकार कर लिया है, ३. इतराता है, ४. मस्त पड़ा है, ५. रेत की नींव पर, ६. इनकी नींव को हिला दे, ७. परलोक के बिगड़ने का भी भय नहीं, ८. खुदा व शैतान का ढोंग रचकर, ९. नाम का प्रसिद्धि का भूखा, १०. बुद्धिमान, ११. सभी जानने वाले अज्ञानी हैं, १२. मनुष्य, १३. शासक, १४. वृक्ष व पेड़-पौदे इन पर राज कर रहे हैं, १५. नेता डाकू बन बैठे हैं, १६ ज्ञानदाता ब्राह्मण भेंट लेना ही जानता है, १७. श्रेष्ठ, १८. बुद्धिमत्ता, १९. जो सुगमता से प्राप्य नहीं था, २०. जो मेरे उपकार के अनुरूप हो, २१. सबको संसार में वेद का सद्ज्ञान दे दे ।

ऋषि का व्रत

(गुरु जी के आदेश के उत्तर में ऋषि यह व्रत लेते हैं)

तुम्हारा हर लफ़्ज़ मुझ को भगवन् ! हज़ार तफ़सीर वेद[१] की है
वोह पास है इस सुख़न[२] का मुझको जो तुम को तौकीर[३] वेद की है
जो फूल झड़ते हैं इन लबों से हैं बाग़े अरफां का इतर सारे[४]
बसी ज़बां पर मिरे गुरु की, हमेशा तकरीर वेद की है
न इवज़ तालीम[५] का है मुमकिन, न भेंट है पास मेरे भगवन् !
यह नज़र लो मिलक[६] है तुम्हारी, जो दिल में तनवीर[७] वेद की है
जो चाहो हर कंकरी को दे दूं कहो तो मेहर और माह को बख़्शूं[८]
तुम्हारे होंठों का सदका[९], हर ज़र्रा मुझ को तस्वीर वेद की है
न दिल में यादे वतन का चरका[१०], न सर में घर बार का है सौदा[११]
यहां तो ख़ाक और ख़ूं से मनजूर अपने तामीर वेद[१२] की है
यह पाओं दें ताजे शह को ठोकर[१३], बदल लें मट्टी से लाल ओ गोहर[१४]
जहां में मद्दे नज़र इन आंखों को, आम तसख़ीर[१५] वेद की है
यह सांस है तब से सांस अपना, हुआ है जब वेद विरद[१६] इसका
यह जां हुई तब से जां हमारी, कि इसमें तासीर[१७] वेद की है
कनिशती आतिश कदे[१८] को छोड़े, बरागी धूनी को राख कर दे
जहां में कर दूं वोह आग रोशन कि जिसमें तनवीर वेद की है
सिखाऊं लामा को बुद्ध बनना, सबक अहिंसा का जैन को दें
धरम के सपनों में सब हैं, उनसे कहूं जो ताबीर वेद[१९] की है
हिला दूं जड़ वहम की ज़मीं से उड़ा दूं कुफ़्र इनके करके पुर्ज़े
न इसको छोड़ूं न उसको रखूं कि इनसे तहकीर[२०] वेद की है
अंधेर आलम में है तो भगवन् ! जला के जी लाऊंगा उजाला[२१]
बदन जो दाग़ों से हो चराग़ां[२२], करूंगा जल जल के दीपमाला

१. वेद भाष्य, २. आपके वचन का आदर, ३. सन्मान, ४. ब्रह्म विद्या का सार, ५. विद्या का मूल्य नहीं है । क्या बदले में दूं ?, ६. सम्पदा आपकी आप ही को भेंट है, ७. ज्योति, ८. छोटे बड़े, कंकरी से लेकर चांद सूर्य तक–सभी को यह ज्ञान दे दूं, ९. बलिहारी, १०. घाव, ११. भूत या पागलपन, याद, १२. वेद-प्रचार भाव है, १३. राज ताज तक ठुकरा दें, १४. रत्न, १५. वेद का जय जयकार, १६. कण्ठस्थ, १७. वेद की रंगत, १८. यहूदी अपना मन्दिर तज दें, १९. वेद का मर्म या भाव, २०. निरादर, २१. 'जी जलाके करुं उजाला' अधिक अच्छा लगेगा, २२. ऋषि का बलिदान विषपान से हुआ था । सारे शरीर पर विष के कारण छाले फूट पड़े मानों कि घाव दीपक बन गये और वह दिन भी दीपमाला का ही था ।

अन्तिम दृष्टि[१]

शुआयें सुबहे सादिक[२] की हैं घर घर नूर फैलाती,
हैं बाग़ो राग़ में यकसां प्यामे ताज़गी लाती
चमन की दुल्हनों को नूर के ज़ेवर हैं पहनाती,
हमामे ऐश में सहरा को हैं इक गुसल दे जाती[३]
मगर हरबा[४] से पूछो सुबह सादिक क्या तमाशा है,
कहां वोह बात गो मुर्ग़ा भी तड़के बांग देता है
पहाड़ों को हैं फ़रहत[५] में डुबोती चांद की किरणें,
रुख़े गर्दूं[६] पै फैलाती हैं मोती चांद की किरणें
हैं शीरे हुसन[७] दरया में बलोती चांद की किरणें,
ज़मीं क्या आसमां का मुंह हैं धोती चांद की किरणें
कबक[८] के दिल पै है कुछ सब्त अनोखी कैफ़ियत[९] इसकी
नहीं मालूम कुछ चश्मे ग़ल्त बीं[१०] को सिफ़त इसकी
कंवल के फूल को दलदल में देखा लाख आंखों ने,
उड़ाया हमनशीनी का मज़ा शबनम के कतरों ने[११]
लताफ़त[१२] को बहुत परखा किसी के नर्म हाथों ने,
सिखाया ख़ूब अरफ़ां का सबक पीरों को रिंदों ने[१३]
किसी ने यूं न जोहड़ से छना आबे बका[१४] देखा,
हुआ इन पत्तियों की रस से जूं शीरीं दहन भंवरा[१५]
थीं जगमग कर रही घर घर में दीवाली की कंदीलें[१६]
बिछाय थी ज़मीने हिन्द आंखें राम की रह[१७] में
कई दिल हो चुके नूर आशना[१८] थे बातों बातों में,
हज़ारों खुश नसीबों ने ऋषि से की थीं चार आंखें
मगर महफ़ूज़ थी अब तक निगाहें आख़री उसकी[१९],
किसी के दिल में होनी इससे थी अरफ़ां की दीवाली

हुई हरबा की गो नूरे सहर से आंख नूरानी,
कबक गो लम्हा भर को बन गई महताब[२०] की रानी
था भंवरे के लिए आबे बका गो फूल का पानी,
किया ज़ौके हलावत ने उसे ऐ आह ! ज़िन्दानी[२१]
न पाई वोह चमक 'सादिक' ! किसी मुशताके फ़रहत ने[२२]
निगाहे आख़री से जो ज़िया पाई गुरुदत्त ने ।।

---

१. इसका शीर्षक मूल में 'निगाहें वापसीं' है । हम ने इसका अर्थ 'अन्तिम दृष्टि' शीर्षक बनाया है । 'जिज्ञासु', २. प्रातःकाल जब प्रकाश हो जाता है तो किरणें उद्यानों में, वनों में, खेतों में समान ताज़गी का सन्देश लाती हैं, ३. मौज मस्ती के स्नानागार में वन को स्नान करवा देती है ।, ४. गिरगट फ़ारसी काव्य में यह प्रकाश की दीवानी होती है। उजाला होने से पूर्व तड़पती है।, ५. आनन्द, ६. आकाश का मुखड़ा, ७. सौन्दर्य का दूध, ८. चकोर, ९. चकोर के हृदय पर चांदनी का कुछ अनूठा प्रभाव अंकित होती है।, १०. वास्तविकता को न देखकर जो विपरीत के दोष को ही देखे ।, ११. ओस की बूंदें ही फूल की संगत का आनन्द लूट पाती हैं।, १२. कोमलता, १३. पीरों सन्तों को आध्यात्मिकता का पाठ स्वच्छन्द फक्कड़ों ने सिखा दिया, १४. अमृत जो पीने से कोई अमर हो जाय। १५. भंवरा इन पत्तियों का रसपान करता है तो उसका मुंह मिठास से भर जाता है, १६. दीपकों की पंक्तियां, १७. उर्दू फ़ारसी में राह का 'रह' भी बोलते व लिखते हैं।, १८. ज्योति से ज्योतित हो चुके थे, १९. परन्तु ऋषि की अन्तिम दृष्टि अभी किसी और के लिए ही सुरक्षित पड़ी थी, २०. चकोर कुछ ही क्षण के लिए चांद की रानी बन गई । २१. भंवर कमल के फूल में स्वाद लेने में मस्त होने से उसके बन्द होने पर बन्दी बन जाता है।, २२. आनन्द की चाह रखने वाले किसी और ने ऐ 'सादिक' वह ज्योति न पाई जो ऋषि की अन्तिम दृष्टि से गुरुदत्त को प्राप्त हो गई ।

अनाथों का शुक्रिया

फूल थे पुयमुर्दा,[१] मुद्दत से जुदा डाली से हम
अबर से नोमीद थे, मायूस थे माली से हम[२]
थे पड़े ऊँधे ज़मीं पर गो निगूँ हाली से हम[३]
ख़ाक में मिलते न थे रहरो की पामाली से हम[४]
तू ने छाती से लगा कर फिर गुले नो कर दिया[५]
बाप के साय से बढ़कर सायाय मुर्शद मिला[६]

---

१. मुर्झाय हुए, २. वर्षा के आने की व माली द्वारा सिंचाई की आशा नहीं थी, ३. दुर्भाग्य के कारण ऊंधे पड़े हुए थे, ४. पथिक के कुचलने से, ५. नया फूल बना दिया, ६. गुरु की छत्रछाया ।

विधवा का शुक्रिया

कस मुपर्सी[१] मेरी हमदम बेकसी हमराज़[२] थी
अशक की तसबीह थी जो रोज़ो शब हमराज़ थी[३]
ग़ैर तो क्या ? बदगुमाँ था बाप, माँ दमसाज़ थी[४]
एक बेवा थी, खुदाई महवे मशके नाज़ थी[५]
तेरी हमदर्दी ने फिर जीने के काबिल कर दिया
बचपने के ब्याह को रोका, यह की मुझ पर दया[६]

---

१. मुझे कोई पूछने वाला नहीं था, २. मेरा कोई नहीं था—असहाय थी, ३. अश्रुओं की माला दिन रैन फेरती थी, ४. माता भी मेरी चुग़लियां ही करती थी, ५. सभी मुझ पर कुदृष्टि का अभ्यास किरते, चिड़ाते सताते थे, ६. बाल विवाह के कारण ही हिन्दुओं में अधिक विधवायें थीं ।

दलितों का शुक्रिया

क्या पता था ? जन्म से पत्थर थे या हैवां थे हम
मूल था कुत्तों से कमतर, इस कदर अर्ज़ाँ थे हम[१]
ज़ुल्म सहते थे मगर चुप, कालिबे बेजाँ थे हम[२]
लौटते कीचड़ में थे, ख़ाशाक में ग़ल्ताँ थे हम[३]
हम को पञ्चम कह रहे थे तू ने अव्वल कर दिया[४]
वेद का दरवाजा क्या खोला, सब भण्डारा भर दिया[५]

---

१. हम इतने सस्ते थे, २. हम निर्जीव थे, जान जिस में न हो उसका शरीर थे, ३. कूड़े कचरे में पड़े थे, ४. हमें चारों वर्णों से बाहर कर रखा था। ऋषि ने कहा कोई अधम से अधम व्यक्ति भी गुण कर्म से ब्राह्मण बन सकता है ।, ५. मूल में 'दिये सब भण्डारा' छपा है । यह किताबत की अशुद्धि है । हमने 'सब भण्डारा भर दिया' करके सुधार किया है । **'जिज्ञासु'**

वेदों का शुक्रिया

थे पड़े अल्मारियों में हम कोई पुरसां[१] न था ।
नाम लेते, पर न कोई खोल कर था देखता ।।

मानिये पिन्हां से होते क्या मुहकक आशना[२] ।
राममोहन राय तक वेद-उपनिषद को कह गया[३] ।।

जहल का मख़ज़न कोई कहता, कोई ज़ुल्मत की कान[४] ।
हो भला तेरा किया तू ने हमें हिकमत की कान[५] ।।

---

१. पूछने वाला नहीं था, २. गवेषक वेद के गूढ़ रहस्यों से कैसे परिचित होते ?, ३. राजा राममोहन राय उपनिषदों को ही वेद कह गये, ४. कोई अज्ञान का भण्डार और कोई हमें अन्धकार की खान बताता था, ५. ऐ ऋषि दयानन्द तेरा भला हो तू ने हमें ज्ञान विज्ञान की खान सिद्ध कर दिया ।

इसी लिये तो ऋषि दयानन्द को 'वेदों वाला' ऋषि कहा व जाना जाता है । **'जिज्ञासु'**

ऋषियों का शुक्रिया

योग[१] से तेरे हुआ फिर ज़िन्दा पातञ्जल का नाम,
आ के कलजुग में किया पूरा कपिल का तू ने काम ।
तेरे लब से जैमिनि का फिर हुआ जारी कलाम,[२]
व्यास और गौतम हुए तेरी ज़बाँ से ताज़ा काम[३] ।।

राम की जारी कराई तू ने सच्ची स्तुति[४] ।
मर्तबा पर अपने आई, सर्ख़रू गीता हुई[५] ।।

---

१. तपस्या, २. तेरे अधरों से जैमिनि ऋषि के विचार हो गये ।, ३. व्यास व गौतम आदि ऋषियों की कामनाएँ तेरी वाणी से पूरी हो रही हैं ।, ४. जब तक राम को अवतार कहकर उसकी पूजा की जाती थी तब तक राम का सम्मान व प्रशंसा नहीं थी । यह राम का निरादर था । परमात्मा होकर राम जैसा जीवन बिताना कोई बड़प्पन थोड़ा है । ईश्वर अपने पद से गिराया गया । ऋषि ने राम को महापुरुष बताया ।, ५. लोग गीता को वेद से भी बड़ा बताते थे । ऋषि ने इसे मानव की कृति बताकर इसका उचित सम्मान किया ।

***

सब मिलकर नज़रे न्याज़[१] लाते हैं

जानते हैं हम कि है तौसीफ़ से तू बे न्याज़[२] ।
बढ़ न जायेगा तिरा कुछ शुकरियों से इम्त्याज़[३] ।।
बन्दाय एहसां[४] को लाज़म है मगर नज़रे न्याज़ ।
कर कबूल उसको है गो लोंगों से भी कम अपना साज़[५] ।।

राण्ड की आहों में लाय हैं यतीम आंसू पिरो[६] ।
वेद पढ़कर पेश करते हैं अछूत इस हार को ।।

---

१. भक्ति भाव की भेंट, २. तुझे प्रशंसा की चाह ही नहीं, ऋषि उस से ऊपर है, ३. मान, प्रतिष्ठा, ४. जिसका उपकार किया जाये, ५. भले ही हमारी भेंट का महत्त्व लवंगों से भी थोड़ा है ।, ६. विधवाओं की आहों की लड़ी में अनाथ अश्रु पिरोकर लाये हैं ।

फ़र्याद[१]

ऐ कि था तू अनाथों का यतीमों का पिदर[२] ।
आहों से बेवाओं[३] की छलनी रहा तेरा जिगर ।।
सह न सकता था रहें इनसान कुत्तों से बतर[४] ।
बे ज़बानों[५] की ज़बां था, भूले भटकों का मुकर[६] ।।
कुछ पता है तुझको ? हैं पैरो तेरे किस नींद में[७] ।
मौत बनकर आज है घेरे हुए ग़फ़लत इन्हें[८] ।।
यह तिरे बीमार बच्चों को दवा देते नहीं ।
यह सिसकतों को भी तो आबे बका[९] देते नहीं ।।
आह ! क्या बेदर्द हैं मुंह से दुआ देते नहीं[१०] ।
चारा गर हैं और जवाबे इलत्जा देते नहीं[११] ।।
और क्या होगा अन्धेर इस काले गर्दूं के तले[१२] ।
वेद के मन्दिर पै पहरे लग गये पुलीस के[१३] ।।
कौन सी बदली में तू ऐ मिहर कामिल[१४] ! छुप गया ।
हम से भी बढ़कर कोई था तीरगी में मुब्तला[१५] ।।
लम्हा अफ़गन[१६] आज है किस लोक में तेरी ज़या[१७] ?
दीप माला के ही दिन यह घर अन्धेरे में रहा ।।
ऐ अलीम सोज़े ग़ैर ! असबाब हैं फिर सोज़ के[१८] ।
तालिब मुक्ति[१९] है क्या ? मुक्ति नहीं तेरे लिये ।।
आ जल ऐ शमे हदायत[२०]! फिर इसी महफ़िल में जल ।
इस अन्धेरी इस महीब उजड़ी हुई मनज़िल[२१] में जल ।।
रात के पर्दे में जल तीरा ज़मीं के दिल में जल ।
दीदाय खुर्शीद में, चश्मे महे कामिल में जल[२२] ।।

हां जल ऐ मिहरे सिफ़ा[२३] ! फिर सत्य का परकाश कर ।
फिर हमारे जहल का नूरे सफ़ा से नाश कर[२४] ।।
फिर यतीमों के लिये पैग़ामे रहमत[२५] बन के आ ।
फिर अनाथों के लिये पैमाने शफ़कत[२६] बन के आ ।।
फिर अछूतों के लिये सामाने इज़्ज़त[२७] बन के आ ।
बे नवाओं के लिए फिर ख़ाने नैमत बन के आ[२८] ।।
वेद की तफ़सीर अधूरी है इसे पूरा भी कर[२९] ।
मुद्दयी की बात को सच्चा भी कर झूटा भी कर[३०] ।।

---

१. विनय, २. पिता, ३. असहाय, दुखिया, विधवायें, ४. अधिक बुरी अवस्था, ५. मूक, ६. ठिकाना, ७. तेरे अनुयायी किस स्थिति में हैं, ८. नींद, भूल चूक, ९. अमृत, १०. किसी को आशीष देने में क्या लगता है ?, ११. डाक्टर हैं परन्तु रोगी की विनती नहीं सुनते ।, १२. काले आकाश के नीचे, १३. १९१८ में लाहौर में कई मास तक आर्यसमाज मन्दिर को ताला लगा रहा । पुलिस का पहरा बिठा दिया गया । वही स्थिति जालन्धर में आज स्वर्गीय आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय की है, १४. पूर्ण सूर्य, १५. अन्धेरे में डूबा, १६. झलक डालने वाले, १७. प्रकाश, १८. परायों के दुःख की आग में जलने वाले पुनः दुःख के कारण हैं, १९. मुक्ति चाहने वाला, २०. राह दिखाने वाले, २१. डरावनी राह में, २२. अन्धेरी भूमि में जल, दिलों में जल, सूर्य की आंख में और चन्द्र के नयनों में प्रकाश दे, २३. पवित्रता के सूर्य, २४. ऐ पवित्रता के सूर्य हमारे अज्ञान का नाश कर दे, २५. दया का सन्देश, २६. दया का वचन, २७. मान सम्मान की सामग्री व साधन ला, २८. स्वादिष्ट मीठे-मीठे खाने के पदार्थ, २९. अधूरे वेदभाष्य को पूरा कर दे, ३०. दावा करने वाले, प्रश्न करने वाले, मांगने वाले की बात के सच्च झूठ का निर्णय कर दे ।

ऋषि ! तेरी लाज !

तेरे हजूर में आने के हम नहीं काबिल[१] ।
तुझे रुख़[२] अपना दिखाने के हम नहीं काबिल ।।
है हाले ज़ार[३], सुनाने के हम नहीं काबिल ।
जो बीती हम पै, बताने के हम नहीं काबिल ।।

है जब से छोड़ा तुझे, एतबार[४] खोया है ।
भटक भटक के सरासर वकार[५] खोया है ।।

कहां वोह अज़्म[६] ! अरब में हवन होंगे ।
सदाय ओ३म्[७] से हम रोम को गुञ्जायेंगे ।।
प्याम[८] ले के तिरा चीनो शाम जायेंगे ।
जो हम ने देखा है आफ़ाक[९] को दिखायेंगे ।।

सलाय आम की सूरत था तेरा दरवाज़ा[१०] ।
यह देख हम ने है इस पर लगा दिया पहरा[११] ।।

बुझाने आये थे हम आग याँ ख़सूमत की[१२] ।
हवन से लानी हमें बार्शें थीं रहमत[१३] की ।।
हमें चलानी थी यां रस्मो राह उख़ुव्वत[१४] की ।
उखेड़नी हमें आलम से जड़[१५] थी नफ़रत की ।।

समाज में हमें लाने थे गबरो ईसाई[१६] ।
किये समाज बदर[१७] हम ने आर्य भाई ।।

हम उन पै जाल कभी हिरस[१८] का बिछाते हैं ।
मुकदमों की कभी ज़द में उनको लाते हैं[१९] ।।
हमेशा ख़ौफ़ उन्हें पुलिस का दिखाते हैं ।
कबायें काली दिखाकर[२०] उन्हें डराते हैं ।।

है थान काली का या है समाज का मन्दिर[२१] ?
बना है बंगला पुलिस का तिरा मन्दिर[२२] ॥
किसी ने हम को कहा तख़्तो ताज[२३] से बाग़ी ।
किसी ने दी हमें तोहमत[२४] हैं राज से बाग़ी ॥
न हम ख़राज से बाग़ी न बाज से बाग़ी[२५] ।
हुए जो बाग़ी तो किस से ? समाज से बाग़ी ॥
जहां से डरके तिरे पाक नाम को छोड़ा ।
कहा था–काम न छोड़ेंगे–काम को छोड़ा ॥
तिरा यह हुकम न परवाय मालो जाह[२६] करें ।
तिरा असूल कि जानदार का रफ़ा[२७] करें ॥
हम अपना जंगोजदल[२८] से ही घर तबाह करें ।
जो अपने बैरी हैं, औरों से क्या निबाह करें ॥
तेरा यह ख़ासा[२९] बना लेना दोस्त दुशमन को ।
हमें कमाल लड़ाने में चोली दामन को[३०] ॥
जो दिल में बात है मख़फ़ी[३१] बता नहीं सकते ।
जो राज़ सीने में है, लब पै ला[३२] नहीं सकते ॥
जिगर पै दाग़ हैं प्यारे ! दिखा नहीं सकते ।
मगर तू स्वामी है तुझ से छुपा नहीं सकते ॥
जो हम समाजी हैं, तहसीले मुद्दआ तक हैं[३३] ।
तिरे तो नाम के दुशमन हैं तेरे घातक हैं ॥
यह सच्च है हम ने डुबोया है नाम वेदों का ।
सुनाया सब को उलट कर प्याम वेदों का ॥
ज़बां पै ज़िकर है गो सुबहो शाम वेदों का ।
है बात हक की नहीं कोई काम वेदों का ॥
न थे यह सच्च है, न थे हम अरूज के काबिल[३४] ।
ज़हे नसीब[३५] ! कि हम हो गये तिरे काबिल ॥
जन्म ही जब तुझे हिन्दोस्तां में लेना था ।
इसी घुटे-इसी मैले मकाँ में लेना था ॥

हमारे घर को जब ओजे जनां में लेना था[३६] ।
हमें फिर अपनी ही गोदे अमाँ में लेना था[३७] ।।
हमारी क्या ? तुझे आज अपनी लाज रखनी है ।
यह तेरी शान है शाने समाज रखनी है ।।
तेरा प्याम जहां में बुलन्द होना है[३८] ।
तिरा कलाम[३९] जहां में बुलन्द होना है ।।
यह पाक नाम जहां में बुलन्द होना है ।
ऋषि का काम जहां में बुलन्द होना है ।।
मिटा ! मिटा ! हमें ऐ आसमां ! मिटा दे तू ।
नहीं यह सहल ऋषि का निशां मिटा दे तू[४०] ।।

---

१. हम तेरे सामने आने के योग्य नहीं रहे, २. मुख क्या दिखायें, ३. हम अपनी दुर्दशा क्या बतायें, ४. साख नहीं रही, ५. गरिमा, प्रतिष्ठा, ६. संकल्प, दृढ़ निश्चय, ७. ओ३म् का नाद, ८. सन्देश, ९. सब लोकों, अखिल विश्व, १०. सबके लिये धर्म के द्वार खोले थे, ११. हा ! हम ने समाज मन्दिरों पर, सभाओं के द्वार पर ताले लगवा दिये, १२. द्वेष की दाह, १३. दया की वृष्टि, कृपा की वृष्टि, १४. भाईचारा की नीति, १५. हमें तो संसार से घृणा को जड़ से उखाड़ना था, १६. पारसी व ईसाई, १७. बहिष्कृत, १८. लोभ, १९. कोर्टों में घसीटते हैं। वर्तमान के तथाकथित लीडरों के कारण कोर्टों में चहलपहल रहती है, २०. काले कोट वाले वकील, २१. रक्तपिपासु काली माता, २२. पुलिस चौकी, २३. राजद्रोही, २४. दोष लगाया, २५. कर न देने के विद्रोही, २६. सनाथ चक्रवर्ती से भी भयभीत न हों, २७. भला, २८. गृह कलह, २९. स्वभाव, ३०. परस्पर लड़ाने में दक्ष, ३१. गुप्त, ३२. अधरों पर, ३३. स्वार्थसिद्धि के लिये, ३४. उन्नति, ३५. यह सौभाग्य था, ३६. स्वर्ग तुल्य भारत को ऊंचा उठाना था, ३७. शान्ति की गोद, ३८. तेरा संसार में बोलबाला होगा, ३९. तेरे वचन संसार सुनेगा, ४०. ऋषि के नाम व काम को मिटाना सुगम कार्य नहीं है ।

***

मेरे स्वामी की शान

मेरे स्वामी शान तेरी क्या से क्या हो जायेगी ।
है करामत[१] आज, कल तक मोजज़ा[२] हो जायेगी ।।
राम के भक्तों ने देखा है तुझे बनवास में[३] ।
फिर वही जंगल की जारी जात्रा हो जायेगी ।।
सर बसर तफ़सीर गीता की है प्यारे की हयात[४] ।
मरने वालों को, यह तदबीरे बका हो जायेगी[५] ।।

सूँघ कर वहदानियत की बू रियाज़े हिन्द में[६] ।
मोरवी मुस्लिम को मक्का दूसरा हो जायेगी ।।
पहुँच कर बैतोल-मुकद्दस में मसीहाई तिरी[७] ।
ऐहले ईसा को नया इबने ख़ुदा हो जायेगी ।।
राजपूत ईसार[८] में परताप पायेंगे तुझे ।
मरहट्टों को वीरता तेरी शिवा हो जायेगी ।।

बीवी बच्चों को न होगा बोझ अब्बा का फ़िराक ।
तेरी अजलत बुद्ध की जब राहनुमा हो जायेगी ।।
नानक और गोविन्द का दर्शन करेंगे तुझमें सिख ।
तेरी भक्ति रुख़ बदलकर वीरता हो जायेगी ।।
जैन सीखेंगे सबक, तुझ से अहिंसा धर्म का ।
छूत से उनको अदावत[९] बरमिला[१०] हो जायेगी ।।

है मुदब्बर[११] को तिरी तदबीर, तदबीरे अरुज[१२] ।
ऐहले हिकमत[१३] को तिरी हिकमत असा[१४] हो जायेगी ।।
मजलसों[१५] में शोर बरपा है तिरी तलकीन[१६] का ।
कल मज़म्मत[१७] थी, वही फिर कल सना[१८] हो जायेगी ।।
क्यों लगे प्यारा न 'सादिक !' तुझको स्वामी का समाज ।
जानशीं[१९] स्वामी की मेरे यह सभा हो जायेगी ।।

१. बड़प्पन-श्रेष्ठता २. चमत्कार ३. श्री राम चौदह वर्ष वनवासी रहे। ऋषि दयानन्द अठारह वर्ष तक योगियों साधुओं की खोज में वनों में भटकते रहे। ४. आपका सम्पूर्ण जीवन गीता का भाष्य है। ५. यह मरने वालों के लिये जीवन की एक युक्ति है। ६. भारत की वाटिका में एकेश्वरवाद की सुगंधि सूंघ कर। ७. युरुस्लम के पूजा घर में पता चलेगा कि दयानन्द सबको ईश्वर का पुत्र मानते हैं। ८. बलिदान् ९. ऋषि ने तो विवाह ही न किया, गृह-त्याग कर विरक्त हो गये। पत्नी व बच्चों को विरह का दुःख न सहना पड़ा। ९.वैर १०. खुल्लम खुला ११. विचार शील १२. उत्थान की युक्ति १३. विचारवान् १४. लाठी १५. सभाओं १६. अनुकरण १७. निन्दा १८. प्रशंसा १९. उत्तराधिकारी ।

* * *

कहूं क्या कि क्या क्या दयानन्द था ?[१]

कहूं क्या कि क्या क्या दयानन्द था ?
दो आलम थे अजज़ा[२] वोह पैवन्द[३] था ।।
था भारत उसे मर्कज़े कायनात ।
वोह कौनीन[४] के दिल का दिल बन्द[५] था ।।
शिकायत न आई ज़बां पै कभी ।
वोह मालिक की मौजों पै खुर्सन्द[६] था ।।
थे आफ़ाक[७] बन्द उसके अफ़कार[८] में ।
वोह कब फ़िक्रे आफ़ाक[९] में बन्द था ?

* * *

मसीहाई ! ले - मैं मसीही हूं आज[१०] ।
दयानन्द इबने खुदावन्द था[११] ।।
नज़र में न उसकी था इन्सां अछूत ।
अछूता अछूतों का दिलबन्द[१२] था ।।
यतीमों के सिर पर था ज़ल्ले पिदर[१३] ।
कि साईं का साया[१४] दयानन्द था ।।
मुसम्मा था बा इस्म खुद जलवागर[१५] ।
मुजस्सम[१६] दया मूर्त आनन्द था ।।

* * *

मुझे प्यारा आलम है उसके तुफ़ैल[१७] ।
वोह आलम के अजज़ा का पैवन्द था[१८] ।।
दया की तज्जली थी ज़र्रात में[१९] ।
जो पैवस्तगी[२०] थी वोह आनन्द था ।।

था पाबन्द सर रिशताय हुर्रिय्यत[२१] ।
था आज़ादा रो और पाबन्द था[२२] ।।
मुसीबत थी वोह.......चन्द राहत[२३] ।
तवक्कुल[२४] मुसीबत में दह चन्द था[२५] ।।
रहा गोद में कैद मां की न वोह ।
दुआय दो आलम का फ़रज़न्द था[२६] ।।
थे शर्कैन उस की अदा पर निसार[२७] ।
वोह मशरक का मग़रब से पैवन्द था[२८] ।।
भरोसा है 'सादिक' मुझे सिदक[२९] पर ।
वोह फ़तहे सदाकत की सौगन्द था[३०] ।।

---

१. यह रसीला गीता दयानन्द आनन्द सागर में नहीं है । हम पण्डित जी की रचनाओं की सघन खोज में लगे थे तो ईश्वर ने कृपा वृष्टि की । लाहौर से छपने वाले 'कर्मवीर' उर्दू के एक विशेषाङ्क में इसे पाकर हमें अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई । यह पण्डित जी की अन्तिम रचनाओं में से एक है । 'जिज्ञासु'

२. टुकड़े, ३. जोड़, ४. लोक परलोक, ५. पुत्र, प्यारा लगने वाला, ६. प्रसन्न, ७. सब जगत्, सब लोक, ८. चिन्तन, ९. जगत् की चिन्ता, १०. ख्रिस्त मत ! ले सुन मैं भी आज इस कारण ईसाई हूं, ११. ऋषि दयानन्द ईश्वर का पुत्र था । इस विश्वास के कारण, १२. प्यार, १३. पिता की छाया, १४. ईश्वर की छाया, १५. भाव यह है कि वह यथा नाम तथा गुण था, १६. दया का साकार रूप, १७. कृपा से, कारण से, १८. सृष्टि के टुकड़ों का जोड़, १९. प्रमाणुओं में दया का प्रकाश था, २०. मिलाप, जोड़, २१. स्वतन्त्रता से चलने वाला था परन्त नियमबद्ध था, २३. इस पंक्ति में एक शब्द छूटा है । मूल में ही किताबत में छूट गया । **'मुसीबत थी दह चन्द राहत उसे'** ऐसा कर दें तो यह भाव होगा कि विपदा उसके लिए दस गुणा आनन्ददायक थी ।, २४. आत्मविश्वास, २५. दस गुणा, २६. जगत् की प्रार्थना का फल यह ईश्वर-पुत्र था, २७. पूर्व के निवासी उसके व्यवहार पर बलिहारी थे, २८. पूर्व पश्चिम का मिलाप कराने वाला, २९. सचाई, ३०. वह ऋषि सत्य की विजय की सौगन्द था ।

***

सत्यार्थप्रकाशः[१]

वेदों के चमन में तू शबा रोज़ फिरा[२] ।
भंवरे की तरह कली कली पर बैठा ॥
सत्यार्थप्रकाश ता हो शहद शीरीं[३] ।
हर पत्ते का तू ने जूं मगस रस चूसा[४]॥
ऋषियों की थी ख़लत मलत बाणी[५] ।
था दूध में मिल गया कहीं से पानी ॥
सत्यार्थप्रकाश के जो हैं दो हिस्से ।
हैं मेरी नज़र में दस्ते शफ़कत तेरे[६]॥
बेदार है करता एक से सोतों को[७] ।
है एक में शमा रहनमाई[८] के लिए ॥

---

१. यह संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य दयानन्द दिग्विजय के श्लोकों का पद्यानुवाद है । 'जिज्ञासु', २. दिन रैन विचरा, ३. ताकि सत्यार्थप्रकाशः समुधर मधु हो । ४. प्रत्येक पत्ते का रस मधु मक्खी के समान चूसा, ५. आर्ष ग्रन्थों में भी प्रक्षेप कर दिया गया, ६. ये पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दोनो भाग तेरे कृपा हस्त हैं, ७. जगाता है, ८. पथप्रदर्शक दीप ।

***

तू क्यों है विक्षुब्ध हृदय !

तू क्यों है ? विक्षुब्ध हृदय !
शान्त सिन्धु है शान्त पवन है
निर्मल निश्चल शान्त गगन है
विमल दिशाओं की चितवन है
देख तुझे होता विस्मय !

मस्त मछलियां उड़ने वाली
फिरती इधर उधर मतवाली
उछल कूद की रचली जाली
उड़ी ! उड़ी ! गिर रही अभय !

तुझे स्मरण किसका आता है
कौन झौंक कर छिप जाता है
किसे ढूंढता नहीं पाता है
मुस्काता हा !! हा !! निर्दय ?

शान्ति कहां? माया है छल है
सजा हुआ सूना देवल है
सूनी निश्चलता चञ्चल है
देखो देव ! कहूं जय जय ॥

***